ज्योति शिखा

आचार्य श्री रजनीश की काम पर वैज्ञानिक एवं क्रांतिकारी नवीन पुस्तक

संभोग से समाधि की ओर

भूमिका : महीपाल

- काम दिव्य है !
  काम की शक्ति परमात्मा की शक्ति है ।
- पवित्र और प्रेमपूर्ण हृदय से काम की स्वीकृति ही काम से मुक्त करती है ।
- जीवन की सही यात्रा–
  काम से राम की ओर ।

प्रकाशक : जीवन जागृति केन्द्र,
बम्बई ।

मूल्य : रु. ३–५० पै.

आचार्य श्री रजनीशजी का सारा साहित्य और पुस्तकें जीवन जागृति केन्द्र बम्बई के अन्तर्गत सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। किसी प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है ।

"सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।"

ज्योति शिखा

आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का
त्रैमासिक संकलन :

★

अंक : १४ वां

सितम्बर १९६९

★

मान्यक सम्पादक :
महीपाल
प्रो. अरविन्द

वार्षिक शुल्क : रु. ५
एक प्रति : रु. १.२५

प्रकाशन स्थल :

एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने)
पहला मजला, रूम नं. ५३,
डा. दादाभाई नौरोजी रोड,
बम्बई–१

फोन : २६४५३०

★

मुद्रण स्थल :

स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई–१

★

अनुक्रम

क्रमांक	विषय	संकलक	पृष्ठ
१	एक बोध कथा	श्री महीपाल	५
२	साधना की प्रथम सीढ़ी	श्री श्याम सोनी	७
३	साधना के चरण	श्री शिव	२४
४	जीवन साधना : क्या और कैसे	श्री भीकमचंद	४५
५	'जिन खोजा तिन पाइयां'	श्री निकलंक	६८
६	समाचार विभाग	... ...	८३
७	आगामी देशव्यापी कार्यक्रम	... ...	८८

सितम्बर १९६९
अंक : १४ वां

ज्योति शिखा

(त्रैमासिक संकलन)

मनुष्य के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए समर्पित

एक बोध कथा

आचार्यश्री ने कहा—

एक बार विवेकानंद खेतड़ी-नरेश के यहाँ मेहमान थे। कुछ दिन वहां ठहरे थे। आज उन्हें विदा देने का दिन था। उन्होंने विवेकानंद की विदाई के लिये एक वेश्या को बुला लिया। राजा और नवाबों का तो, आप जानते हैं, अपना ही ढंग रहा है। वे बिचारे और क्या सोच सकते थे, राग-रंग ही से तो विदा दी जाती है। बस महफिल लग गई और वेश्या को गाने के लिये हुक्म दे दिया गया। उधर विवेकानंद ने ये सुना तो बड़े परेशान हो गये, और अपने आप को तंबू में बंद कर लिया। पर वेश्या बड़ी समझदार थी। सारी परिस्थिति उसकी समझ में आ गई। उसने तंबूरा उठाया और तार छेड़कर गाना शुरू कर

दिया। विवेकानंद तो नहीं गये, तंबू में बैठे रहे। उसने वो भजन गाया –

" प्रभुजी मोरे अवगुण चित न धरो।
समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो ।।

☆ ☆ ☆

इक लोहा पूजा में राखे, इक घर बधिक परो।
पारस गुण-अवगुण नहिं देखे कंचन करत खरो ।। "

उसने विवेकानंद को भारी चोट की। क्योंकि अगर पारस हो, तो वेश्या और दूसरी स्त्री में क्या फर्क करते हो? पारस फिक्र करता है कि कौन क्या है? वो तो जो पास आ जाय, सोना हो जाय! **तो पारस होने पे शक है क्या** ? विवेकानंद तो एक दम घबड़ा गये। पसीना छूट गया। दरवाजा खोलकर भागे। वहां जाकर वेश्या से क्षमा मांगी। और लिखा कि कोई कमज़ोरी रह गई मन में, कहा कि कोई कमज़ोरी रह गई। मरने के दो दिन या तीन दिन पहले किसी से उल्लेख किया और कहा, आज वह वेश्या मिलती तो मैं पूरे मन से उसको गले लगाता। उस वक्त मैं कमज़ोर था, वह ताकतवर थी।

–महीपाल

आत्मा तक पहुँचने का सूत्र है–वर्तमान में जीना। जो आदमी वर्तमान के क्षण में मौजूद हो जाता है वह आदमी अपने भीतर प्रविष्ट हो जाता है।

मलाड साधना शिविर में
आचार्यश्री का प्रथम उद्‌बोधन

संकलन :
श्री श्याम सोनी

साधना की प्रथम सीढ़ी :

मृत्यु का बोध

उसको मैं साधक कहता हूं
जिसने मृत्यु को साथ
ले लिया है ।
उसको मैं संसारी कहता हूं,
जो मृत्यु से भाग रहा है, बच रहा है
और उसे साथ नहीं ले रहा है !

आने वाले तीन दिनों में जीवन की खोज के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें आपसे कहूंगा । इसके पहले कि कल सुबह से मैं जीवन की खोज के सम्बन्ध में कुछ कहूं, प्रारम्भिक रूप से यह कह देना जरूरी है कि जिसे हम जीवन समझते हैं उसे जीवन समझने का कोई भी कारण नहीं । और जबतक यह स्पष्ट न हो जाय, जबतक हमारे हृदय के समक्ष यह बात सुविदित न हो जाय, कि हम जिसे जीवन समझ रहे हैं वह जीवन नहीं है, तबतक सत्य जीवन की खोज प्रारम्भ नहीं हो सकती ।

अन्धकार को ही प्रकाश समझ लें तो फिर प्रकाश की खोज नहीं होगी । और मत्यु को ही कोई जीवन समझ लें तो जीवन से वंचित रह जाएंगे । हम क्या

समझे बैठे हुए हैं, अगर वह गलत है तो हमारे सारे जीवन का फल भी गलत ही होगा। हमारी समझ पर निर्भर करेगा कि हमारी खोज क्या होगी ?

सबसे पहली बात जो निवेदन करना चाहता हूं वह यह है कि बहुत कम लोगों को जीवन उपलब्ध होता है। जन्म तो सभी लोगों को उपलब्ध होता है और अधिकांश लोग जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं और भूल में पड़ जाते हैं। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह केवल जीवन को पाने का एक अवसर है-- पाने या खोने का-- क्योंकि उसके द्वारा जीवन पाया भी जा सकता है और जीवन खोया भी जा सकता है। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह केवल एक अवसर है, वह एक सम्भावना है, वह एक बीज है जिसमें से कुछ विकसित हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह भी हो सकता है कि बीज व्यर्थ पड़ा रह जाय, उसमें से कोई अंकुर न निकले और कोई फूल न लगे, कोई फल न आये-- दोनों बातों की सम्भावनाएं हैं। और जैसा कि आज तक हुआ है, अधिक लोगों का जीवन-बीज व्यर्थ ही पड़ा रह जाता है और कम लोगों के जीवन में अंकुर आते हैं, फूल आते हैं और सुगन्ध आती है। ऐसे थोड़े से लोगों को हम पूजते हैं, उनका स्मरण करते हैं। लेकिन एक बात का स्मरण नहीं करते कि ठीक वैसा ही बीज हमें भी उपलब्ध हुआ है और ठीक वैसी ही सुगन्ध को हम भी उपलब्ध हो सकते हैं। महावीर, बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट को देखकर जिसके मन में यह अपमान का बोध पैदा नहीं होता हो कि उसके भीतर भी ठीक वैसा ही बीज है और मैं भी ठीक उनके ही जीवन जैसे जीवन को उपलब्ध हो सकता हूं-- उसकी सब पूजा व्यर्थ है और ढोंग है और पाखण्ड है। एक बार इस पीड़ा से बचने के लिए हमने कृष्ण को, बुद्ध को, महावीर को भगवान बना रखा है। इस पीड़ा से बचने के लिए कि अगर वे भी मनुष्य हैं, तो हमें अपने मनुष्य होने पर पश्चात्ताप शुरू हो जायगा। यदि वे भी हमारे जैसे मनुष्य हैं तो फिर हमें बचने के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जायगी। इसलिए बचने के लिए-- अपमान से, पीड़ा से, दुख से-- उन्हें भगवान, ईश्वर का पुत्र, तीर्थंकर और न मालूम क्या-क्या नासमझी की बातें हम उनके ऊपर थोपते हैं। हमारे जैसे ही सारे मनुष्य हैं, सारे मनुष्य थे, लेकिन कुछ मनुष्य ठीक से विकसित होते हैं और उनके भीतर से परमात्मा का प्रकाश प्रकट होने लगता है और अधिकतर बीज ठीक से विकसित नहीं हो पाते।

धर्म का यदि कोई भी सम्बन्ध है, तो इसी बात से कि सारे बीज जो होने को हैं वह हो जायें, जो उनके भीतर छिपा है वह प्रकट हो जाय और उसके लिए सबसे पहली आधारभूत जरूरी बात जो आज मैं आपसे कह रहा हूं वह यह है कि जबतक हमें यह स्मरण न आये कि हम जिस दिशा में चल रहे हैं और जो

कर रहे हैं, वह एकदम ही गलत है— तबतक कोई क्रान्ति, कोई परिवर्तन और कोई मोड़ सम्भव न होगा। यह करीब करीब, जिसे हम जीवन जानते हैं, रोज रोज, धीरे धीरे मरते जाने से ज्यादा नहीं है, और लम्बी मृत्यु को जीवन नहीं कहा जा सकता। सत्तर वर्ष में एक आदमी मरता है, यह सत्तर वर्ष मरने की क्रिया चलती है। सौ वर्ष में कोई मरता होगा, कोई पचास वर्ष में मरता होगा। यह मरने की लम्बी क्रिया को ही हम जीवन समझकर चुप बैठे रह जाते हैं। कल आप जितने थे उसमें आज एक दिन कम हो गये हैं, कल और एक दिन कम होगा। जिसे आप उम्र का बढ़ना जानते हैं, वह उम्र का घटना है और जिन जन्म-दिनों को आप जन्मदिवस मानते हैं वह केवल मृत्यु के करीब आने के पत्थर हैं। और सब तरफ से दौड़कर अन्त में पाया जाता है कि हम मौत को पहुंच जाते हैं। किसी तरह

ज्ञान, आनन्द और सौन्दर्य की अनुभूति के लिये युवा चित्त चाहिये। शरीर तो बूढ़ा होने को आबद्ध है, लेकिन चित्त नहीं। चित्त तो सदा युवा रह सकता है। और ऐसा चित्त जीवन और मृत्यु के रहस्यों को जान पाता है। ऐसा चित्त ही धार्मिक चित्त है।

दौड़ते हैं और कुछ भी करते हैं और हजार तरह के उपाय करते हैं, हजार तरह की व्यवस्था करते हैं। यह हमारी सारी दौड़-धूप मृत्यु से बचने की व्यवस्था से ज्यादा चीज नहीं है। कोई धन इकट्ठा करता हो, कोई यश इकट्ठा करता हो, शक्ति बढ़ाता हो – सारी चेष्टा एक बात से बचने के लिए है कि वह जो कल मौत आयेगी, उसके खिलाफ कोई सुरक्षा, कोई सिक्योरिटी की व्यवस्था कर लें। लेकिन सब व्यवस्थाएं टूट जाती हैं और मौत आ जाती है।

एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है :

दमिश्क में एक बादशाह ने एक रात स्वप्न देखा। स्वप्न देखा कि वह एक वृक्ष के नीचे एक घोड़े के पास खड़ा है और किसी काली छाया ने आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा है। लौटकर उसने छाया को देखा तो वह घबरा गया। उस

छाया ने कहा कि मैं मृत्यु हूं और कल तैयार रहना, ठीक जगह पर पहुंच जाना, मैं तुम्हें कल लेने को आ रही हूं।

उसकी नींद टूट गयी, सपना खुल गया, वह घबरा गया और सुबह होते ही उसने अपने राज्य के बड़े से बड़े ज्योतिषियों को बुलाया, बड़े से बड़े स्वप्न को जानने वाले विद्वानों को बुलाया और उनसे पूछा कि इस स्वप्न का, इस लक्षण का क्या अर्थ है ? रात मैंने एक काली छाया देखी, जिसने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा कि कल मैं तुम्हें लेने आऊंगी, मैं मौत हूं, तुम तैयार रहना, और ठीक जगह पर मिल जाना। ज्यादा समय भी नहीं था, केवल कल के दिन की बात थी और सांझ को सूरज अस्त होते होते मौत आ जायगी।

ज्योतिषियों ने कहा कि अब इस समय बहुत विचार का कोई मौका भी नहीं है। आपके पास कोई तेज से तेज घोड़ा हो तो उसे ले लें और भागने की कोशिश करें। जितने दूर निकल जायें उतना बेहतर है। सिवाय इसके कोई उपाय हो भी नहीं सकता था। मनुष्य की बुद्धि और क्या करती ? यही एक उपाय हो सकता था कि उस महल से, उस राजधानी से दूर से दूर निकला जाय। बचने का और उपाय क्या हो सकता था ? आपसे कोई पूछता तो क्या करते ? मुझसे भी कोई पूछता तो मैं क्या बताता ? उन ज्योतिषियों ने ठीक ही बताया। मनुष्य की बुद्धि और ज्यादा दूर दौड़ती भी नहीं है, खोज भी नहीं पाती। सीधी सी बात है कि अब भागें हम, बचें मौत से। तेज घोड़े की उस राजा के पास कमी न थी। राजा के पास तेज से तेज घोड़े थे। एक बहुत तेज घोड़ा बुलाया गया और वह उसपर बैठा और उसने भागना शुरू किया। घोड़ा बहुत तेज था और राजा मन में धीरे धीरे निश्चिन्त होने लगा। घोड़े की चाल को देखकर यह आत्मविश्वास आ जाना स्वाभाविक था कि बच जाऊंगा, निकल जाऊंगा, दूर हो जाऊंगा। धीरे धीरे राजधानी दूर छूटने लगी, राज्य दूर छूटने लगा, नगर-गांव दूर छूटने लगे। घोड़ा भागा जाता था। न तो उस दिन राजा रुका, न उसने भोजन लिया, न उसने पानी पिया। कोई भी कहेगा कि कौन भोजन लेगा, कौन पानी पियेगा ? जिसके पीछे मौत हो ! न उसने घोड़े को ठहराया और न घोड़े के पानी की व्यवस्था की। उस दिन तो दूर से दूर निकल जाना जरूरी था। दोपहर हो गयी थी, राजा काफी दूर निकल आया था। वह बहुत प्रसन्न था। दोपहर तक तो वह उदास था और दोपहर के बाद तो वह गीत गुनगुनाने लगा। उसे ख्याल आया कि अब काफी दूर निकल आया है। सांझ होते होते वह सैकड़ों मील दूर निकल आया था और जब सूरज डूब रहा था तो उसने जाकर एक आम के बगीचे में अपने घोड़े को बांधा और एक झाड़ के नीचे खड़ा हो गया। वह निश्चिन्त

था और परमात्मा को धन्यवाद देने को ही था कि अब वह काफी दूर निकल आया, कि उसी पंजे ने, जिसे उसने रात को देखा था उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। वह घबरा गया। उसने लौट कर देखा कि वही काली छाया खड़ी थी। उस काली छाया ने कहा कि मैं बहुत परेशान थी कि इतनी दूर तुम आ भी पाओगे या नहीं, क्योंकि यही जगह तुम्हारी मौत होनी बदी है। तो मैं हैरान थी कि यह कैसे संभव होगा कि तुम इतना फासला पार कर सकोगे या न कर सकोगे। लेकिन घोड़ा सचमुच तेज था और तुम ठीक से दौड़े और ठीक समय पर मौजूद हो गये।

हम दौड़ें कैसे भी एक दिन यही होगा, और सपना आपने देखा हो या न देखा हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। यह होगा और एक दिन मौत आपको ठीक जगह मिल जायगी, जहां उसको मिलना है। तो यह हो सकता है कि हमारी भागने की दिशाएं अलग हों, हमारे भागने के रास्ते अलग हों, हमारे घोड़े की चाल अलग हो, यह हो सकता है। लेकिन अन्तिम बात में बहुत फर्क नहीं पड़ेगा। किसी झाड़ के नीचे कोई न कोई दिन कन्धे पर हाथ रखा जायगा और तब आप पायेंगे कि

स्वयं की सम्भावनायें पूरी विकसित हों इसके अतिरिक्त जीवन का और कोई आनन्द नहीं।

जिससे आप भाग रहे थे उससे मुलाकात हो गयी है और उस दिन आप घबरायेंगे कि जिससे बचने को आप भाग रहे थे, वस्तुतः आप उसी की तरफ भाग रहे थे।

भागना मौत की दिशा में!

मौत से बचने का कोई उपाय नहीं है। हम कहीं भी भागें, हम मौत की तरफ ही भागते हैं। भागना मात्र मौत में ले जाता है। जो भी भागेगा, वह मौत में पहुंच जायगा। तो यह हो सकता है कि दरिद्र आदमी धीरे धीरे भागेंगे और समृद्ध बहुत बड़े घोड़े पर भागेगा और बादशाह जो है वह बहुत तेज चाल वाले घोड़े पर भागेगा और आखिर में बिना घोड़े के लोग भी वहीं पहुंच जाते हैं और घोड़े वाले भी वहीं पहुंच जाते है। उपाय क्या है? रास्ता क्या है? करें क्या?

तो पहली बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं– जो भी आप कर रहे हैं वह सब आपको मौत में ले जायगा और यह कोई चौंकाने वाली बात नहीं है। आज के

पहले भी जो भी किया गया है वह मौत में ले गया है। थोड़े से लोग मौत से बचे हैं और उन्होंने जो किया है वह आप बिल्कुल भी नहीं कर रहे हैं। थोड़े से लोग मनुष्य जाति के इतिहास में मौत से बचे हैं और उन्होंने जो किया है वह आप बिल्कुल भी नहीं कर रहे हैं। इसलिए आप जो भी तैयारी कर रहे हैं वह मौत की तैयारी है और चाहे वह प्रीतिकर लगे, चाहे अप्रीतिकर लगे। तथ्य और सत्य यही है कि हमारी सबकी तैयारी मौत की तैयारी है।

इन तीन दिनों में मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा कि मौत की तैयारी के क्या लक्षण हैं और जीवन की तैयारी कैसे हो सकती है? हो सकता है, आपके भीतर भी जीवन को जानने की और पाने की आकांक्षा हो। वस्तुतः कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जिसके भीतर जीवन पाने की आकांक्षा न हो, लेकिन फ़िर भी कुछ पागलपन है। कोई बड़ा पागलपन है, कोई बहुत गहरा पागलपन है जिसमें पूरी मनुष्य जाति ग्रसित है। नया बच्चा आता है और उसी पागलपन में दीक्षित हो जाता है। यह स्वाभाविक भी है कि अगर नया बच्चा दीक्षित न हो तो हमें पागल मालूम पड़ेगा। महावीर जिस दिन घर छोड़ते हैं, लोग उन्हें पागल समझते हैं और बुद्ध जिस दिन घर से भागते हैं उस दिन वह भी पागल समझे जाते हैं और क्राइस्ट को भी पागल समझा जाता है।

पूरी मनुष्य जाति पागल है। इसलिए जब भी कोई ठीक आदमी पैदा होता है, तो पागल समझा जाता है। एक और छोटी कहानी कहूं, उससे मेरी बात शायद समझ में आये :

एक गांव में ऐसा हुआ कि एक आदमी सुबह सुबह वहां आया और आकर उसने गांव के कुएं में कुछ डाल दिया और कहा कि अब जो भी इसका पानी पियेगा वह पागल हो जायगा। तो उस गांव में दो ही कुएं थे—एक गांव का कुआं और एक राजा के महल का कुआं। मजबूरी थी, पानी पीना ही पड़ा और सांझ तक सारा गांव पागल हो गया। सिर्फ राजा, रानी और वजीर तीन लोग थे जिन्होंने उस कुएं का पानी नहीं पिया, वे बच गये और पागल नहीं हुए। पूरा गांव सांझ होते होते पागल हो गया था। सारे गांव में एक अफवाह उड़ी कि मालूम होता है कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। यह बिल्कुल स्वाभाविक था, क्योंकि जब पूरा गांव पागल हो गया हो तो वहां एक आदमी, जो पागल नहीं है, पागल मालूम पड़ेगा। वे सारे लोग बहुत चिन्तित और परेशान हुए। उनमें जो बहुत विचारशील थे (और पागलों में बहुत विचारशील लोग होते हैं। इसलिए पागल और विचार-शील में बहुत कम फासला होता है) विचारशील अक्सर पागल हो जाते हैं और

पागल अक्सर विचारशील हो जाते हैं। उन पागलों में भी कुछ विचारशील थे कुछ नेता थे। उन सबने इकट्ठा होकर सोचा कि अब क्या किया जाय। राजा को बिना बदले तो सब गड़बड़ हो जायगा। क्योंकि राजा पागल होगा, तो कैसे चलेगा? वे सब सांझ होते होते राजमहल के बाहर इकट्ठे हो गये और उन्होंने नारा लगाया कि राजा को बदले बिना अब चल नहीं सकता। राजा पागल हो गया है, वजीर पागल है, रानी पागल है। राजा, उसका वजीर और उसकी रानी ऊपर महल पर खड़े होकर विचार करने लगे कि अब क्या करें? उनके सिपाही भी पागल हो गये थे और उनके नौकर भी पागल हो गये थे, सब पागल हो गये थे। अब क्या होगा? राजा ने वजीर से कहा कि जल्दी तुम सोचो। सिवाय इसके कि उस कुएं का पानी हम लोग भी जल्दी पी लें, और कोई उपाय नहीं। उन तीनों ने लोगों से कहा कि तुम थोड़ी देर ठहरो, हम इलाज किये लेते हैं अपने पागलपन का। वे तीनों गये और उस कुएं का पानी पी लिया। फिर उस गांव में बड़ी खुशी मनायी गयी, लोग नाचे और उन्होंने गीत गाये कि राजा का दिमाग ठीक हो गया।

गहरा बुनियादी पागलपन

मनुष्य जाति किसी बहुत गहरे बुनियादी पागलपन से ग्रसित है। कोई बहुत बड़ी विक्षिप्तता है जो हमारे प्राण को पकड़े है और हम नये बच्चे को उसमें दीक्षित कर देते हैं। जो बच्चे इन्कार करेंगे वे विद्रोही मालूम पड़ेंगे, जो बच्चे उस दीक्षा से इन्कार करेंगे वे पागल मालूम पड़ेंगे। उनको हम जबरदस्ती ठोंक-पीट कर लायेंगे उसी रास्ते पर कि वे पागल हो जायं। इसलिए इस दुनिया में स्वस्थ होना बड़ी खतरनाक बात है, और जो आदमी स्वस्थ होता है उसे स्वस्थ होने के लिए बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। किसी को गोली खानी पड़ती है, किसी को जहर पीना पड़ता है या किसी को शूली पर लटकना पड़ता है। पागलों की दुनिया में इसीलिए स्वस्थ आदमी बरदाश्त नहीं किये जाते। इन पागलों की दुनिया में जो जितना बड़ा पागल हो, वह उतना बड़ा प्रीतिकर मालूम होता है, क्योंकि वह अपना मालूम होता है और ठीक उन्हीं रास्तों पर चलता मालूम होता है जिन पर हम चल रहे हैं। तो, मैं जो आपसे कहूंगा कि इस मनुष्य जाति को पकड़े हुए जो गहरी पागलपन की स्थितियां हैं उनसे छुटकारे का क्या मार्ग है? यदि कोई खो जाता है अपना मार्ग, तो मृत्यु इसका फल है। कोई कुछ भी करे, अन्ततः मौत पकड़ लेती है और यह भी जरूरी नहीं है कि बहुत दिन बाद मौत पकड़ लेगी— कल पकड़ सकती है, आज पकड़ सकती है और अभी पकड़ सकती है।

आज की रात मैं तो आपसे यही कहना चाहता हूं। इस पर थोड़ा सोचेंगे,

इस पर थोड़ा विचार करेंगे कि आप जो भी कर रहे हैं, अगर उससे मृत्यु ही निकलती है, तो आपके करने की सार्थकता क्या है? आप जो भी कर रहे हैं, अगर उससे अमृत की ओर आपके चरण नहीं पड़ते हैं, अगर अमृत की ओर आपकी आंखें नहीं खुलती हैं, अगर उस दिशा में आपके जीवन की गति नहीं होती है, जहां मृत्यु नहीं है, तो उसकी उपयोगिता क्या है, उसके कितने दूर तक अर्थ हैं और प्रयोजन हैं? फिर जीवन एक अवसर है और जितने क्षण हम खो देते हैं, उन्हें वापस पाने का कोई भी उपाय नहीं है। और जीवन एक अवसर है, उसे हम किसी भी भांति, किसी भी रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। जो भी हम उसके साथ करते हैं, जीवन परिवर्तित हो जाता है। कुछ लोग उसे सम्पत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। जीवन भर जीवन के सारे अवसर को, सारी आवश्यकता को सम्पत्ति में परिवर्तित कर लेते हैं। लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है तो सम्पत्ति व्यर्थ हो जाती है। कुछ लोग जीवन भर श्रम करके जीवन के अवसर को यश में, कीर्ति में परिणत कर लेते हैं। यश होता है, कीर्ति होती है, अहंकार की तृप्ति होती है; लेकिन मौत जब सामने खड़ी होती है तो अहंकार, कीर्ति और यश सब व्यर्थ हो जाते हैं।

कसौटी क्या है?

कसौटी क्या है कि आपका जीवन व्यर्थ नहीं गया। कसौटी एक ही है कि मौत जब सामने खड़ी हो तो जो आपने जीवन में कमाया है वह व्यर्थ न हो जाय। आपने जीवन के अवसर को जिस चीज में परिवर्तित किया हो, सारे जीवन को जिस दाव में लगाया हो, जब मौत सामने खड़ी हो तो वह व्यर्थ न हो जाय, उसकी सार्थकता बनी रहे। मृत्यु के समक्ष जो सार्थकता है वही वस्तुतः सार्थकता है। तो पुनः दोहराता हूं कि मृत्यु के समक्ष जो सार्थकता है वही बस सार्थकता है, शेष सब व्यर्थ है। यह बहुत कम लोगों के स्मरण में है, यह कसौटी, यह मूल्यांकन, यह दृष्टि बहुत कम लोगों के समक्ष है। आपके समक्ष है या नहीं, इसे सोचने का निवेदन करता हूं। इसे थोड़ा विचार करेंगे कि मैं जीवन भर दौड़कर जो भी इकट्ठा कर लूंगा, जो भी – चाहे पांडित्य इकट्ठा कर लूंगा, चाहे धन इकट्ठा कर लूंगा या बहुत यश कमा लूंगा या कुछ किताबें लिख लूंगा या बहुत उपवास करके तपश्चर्या इकट्ठा कर लूंगा, या चित्र बना लूंगा या कुछ गीत गा लूंगा, लेकिन अन्ततः जब मेरा सारा जीवन अन्तिम कसौटी पर खड़ा होगा तो मृत्यु के समक्ष इनकी कोई सार्थकता होगी या नहीं होगी? अगर नहीं होगी तो आज ही सचेत हो जाना उचित है और उस दिशा में संलग्न हो जाना उचित है कि मैं कुछ ऐसी सम्पदा खड़ी कर सकूं और कोई ऐसी शक्ति भी निर्मित कर सकूं और प्राणों के भीतर कोई

ऐसी ऊर्जा को जन्म दे सकूं कि जब मौत समक्ष हो तब मेरे भीतर कुछ हो जो मौत से बच जाता हो, मौत जिसे नष्ट न कर पाती हो। यह हो सकता है और अगर यह नहीं हो सकता है तो सब धर्म बकवास हैं और व्यर्थ हैं। यह हुआ है, यह आज भी हो सकता है और हरेक के जीवन में हो सकता है। लेकिन यह आसमान से टपक कर नहीं होता है और नहीं यह दान में मिलता है और न इसकी चोरी की जा सकती है और न किसी गुरु के चरणों में बैठकर इसे मुफ्त में पाया जा सकता है। यह किसी और से नहीं पाया जा सकता है, इसे तो जन्माया जा सकता है, इसे तो सृजन किया जा सकता है, इसे तो खुद अपने श्रम और अपने जीवन और अपने संकल्प और अपनी सारी शक्ति को लगाकर निर्मित किया जा सकता है। लेकिन इस निर्माण की दिशा में कदम नहीं उठेंगे तबतक, जबतक कि जो हम कर रहे हैं वह हमें बिल्कुल ठीक ठीक मालूम पड़ता है, तबतक कदम नहीं उठेंगे। जबतक हम जैसा जी रहे हैं वह हमें ठीक ठीक मालूम पड़ता हो, तबतक इस दिशा में कदम नहीं उठ सकते। जीवन हमारा कहीं भ्रान्त है, कहीं गलत है, कहीं दिशा हमारी किन्हीं ऐसे रास्ते पर ले जाती है जो कहीं नहीं पहुंचातीं। इसके बोध का जन्म आवश्यक है और बोध के जन्म के लिए जो कसौटी मैं मानता हूं वह है मृत्यु के समक्ष अपने जीवन को रखकर तौलना। एक दिन तौलना पड़ेगा, लेकिन उस वक्त फिर करने को कुछ भी नहीं होता है। इसलिए जो पहले से ही तौलने लगता है वह जरूर कुछ कर पाता है, उसके जीवन में कुछ हो पाता है, उसके जीवन में कोई क्रान्ति घटित हो जाती है। आज से ही तौलना जरूरी है, प्रतिदिन तौलना जरूरी है।

अपने को तौलो

बर्नार्ड शा ने एक दफा मजाक में यह बात कही है कि प्रत्येक आदमी के लिए दुनिया में ऐसी अदालतें होनी चाहिए कि हर तीन वर्ष में उन अदालतों के सामने हर आदमी को मौजूद होना पड़े और यह अनिवार्य हो कि तीन वर्ष जीने की सार्थकता वह अदालत के सामने सिद्ध करे। यह तो मजाक ही था। न कहीं ऐसी अदालत हो सकती है और कहीं होगी तो बड़ी मुश्किल हो जायगी। कैसे अपने जीवन की सार्थकता को सिद्ध करियेगा, कैसे कहियेगा कि मैं जो जिया हूं उसमें यह फल हुआ है, उससे यह सार्थकता निकली है, उससे यह अर्थ निष्पन्न हुआ है। नहीं, लेकिन छोड़िये, कोई अदालत न हो लेकिन हर आदमी के मन में अपने विवेक की अदालत तो होनी ही चाहिए जिसके समक्ष वह रोज रोज खड़ा हो जाय, जिसके समक्ष उसे प्रति क्षण ही मौजूद होना चाहिए और वहां पूछना चाहिए कि मैं क्यों जी रहा हूं ? और वहां पूछना चाहिए कि क्या जो मैं जी रहा हूं उससे

कुछ होगा, उससे कुछ मिलेगा, उससे मैं कहीं पहुंचूंगा, उससे दौड़ मिटेगी, उससे दुख मिटेगा, उससे अन्धकार मिटेगा, उससे मृत्यु मिटेगी या नहीं मिटेगी ?

ये प्रश्न जिसके मन में बहुत घनीभूत होकर खड़े हो जाते हैं उसके जीवन में धर्म का प्रारम्भ होता है। शास्त्र पढ़ने से धर्म का प्रारम्भ नहीं होता है, लेकिन स्वयं के समक्ष जीवन को निरन्तर तौलने से धर्म का जन्म होता है। रोज रोज तौलने की जरूरत है, एक एक क्षण तौलने की जरूरत है। तो इस विचार के लिए, इस प्रारम्भिक विचार के लिए कहता हूं। इसी आधार पर इधर तीन दिनों में मैं आपसे बात करूंगा उस मार्ग की जिससे हम मृत्यु की दिशा से हटकर अमृत की दिशा में गति कर सकते हैं। होगा यह ख्याल आपके मन में भी कि अगर अमर जीवन मिल जाय तो बहुत अच्छा है। मन में लगता होगा कि कैसे अमृत को पा लें? लेकिन नहीं, वह पाने की वास्तविक आकांक्षा तबतक पैदा नहीं होगी जबतक हमारा मौजूदा जीवन अपनी पूरी व्यर्थता में स्पष्ट न हो जाय, जबतक मौजूदा हमारे जीवन का ढंग, हमारी पद्धति, हमारे सोच-विचार, हमारे प्राणों की गति सबके सब व्यर्थ होकर खड़े न हो जायें। जबतक हमें यह दिखाई न पड़ने लग जाय कि जो भी मैं कर रहा हूं बिल्कुल व्यर्थ है, यह बेचैनी और यह घबराहट और यह चिंता जबतक जीवन में न आ जाय कि जो मैं कर रहा हूं, वह व्यर्थ है, तबतक सार्थकता की दिशा में कल्पना कैसे उठेगी और विचार कैसे जगेगा ? तो आज मैं यही कहना चाहूंगा कि मृत्यु को सामने ले लें। हम सब उसे पीछे खड़े रखते हैं, उसकी तरफ पीठ किये रहते हैं। जो आदमी मृत्यु की तरफ पीठ किये हुए हैं, वे बहुत धोखे में हैं।

मैं एक यात्रा में था। वर्षा के दिन थे। एक पहाड़ी नदी के किनारे मुझे थोड़ी देर रुक जाना पड़ा। मेरी गाड़ी रुक गयी। एक नाला था, वह जोर से पूर पर था। मेरे पीछे और भी दो–तीन गाड़ियां आयीं और वे भी रुक गयीं। उनमें जो थे, वे मेरे अपरिचित थे। लेकिन मुझे बैठा देखकर मेरे पास आये और उन्होंने कुछ बातें शुरू कीं। मैं उनसे बात कर रहा था और उनसे इस सम्बन्ध में अचानक बात हो गयी। उन्होंने मुझसे पूछा कि सबसे ज्यादा सोचने जैसी बात क्या है ? तो मैंने उनसे कहा, एक ही बात सोचने जैसी है : वह है मृत्यु। बहुत सी उनसे बातें होती रहीं। उन्होंने मुझसे कहा कि वे लौटकर मुझसे मिलेंगे। मैंने उनसे मजाक में कहा कि लौटकर मिलने का कोई पक्का भरोसा नहीं। हो सकता है मैं न बचूं, हो सकता है आप न बचें, हो सकता है हम दोनों बचें फिर भी मिलने का संयोग न बने। उनसे मैंने एक छोटी-सी कहानी कही और कभी मेरी कल्पना में नहीं था कि क्या होगा। जब जाते जाते नाला उतर गया तब मैंने उनसे एक कहानी कही :

चीन में एक बादशाह अपने वजीर से नाराज हो गया। उसने उसे कैद कर लिया और तय किया कि फलां दिन वह उसे फांसी दे देगा। लेकिन उस राज्य का रिवाज था कि जब भी किसी को फांसी हो, तो फांसी के दिन सुबह राजा खुद जाकर उस कैदी से मिले और उसकी कोई मंशा हो तो पूरी कर दे। फिर तो वह वजीर था राजा का, बहुत प्यारा रहा था, लेकिन कुछ भूल-चूक हुई थी और राजा नाराज हुआ था और फांसी की सजा दे दी थी। आज फांसी होनी थी, तो सुबह सुबह वह राजा आया। अपने घोड़े से उतरा और वजीर से बोला कि कोई तुम्हारी अन्तिम इच्छा हो तो मैं पूरी कर दूं, लेकिन सुनते ही वजीर की आंखों में आंसू आ गये। राजा हैरान हुआ। वजीर बहुत बहादुर था। रोना उसने जाना नहीं था जीवन में। और यह असम्भव था कि अपनी मौत के ख्याल से वह रोने लगे। राजा हैरान था। उसने कहा कि तुम्हारी आंखों में आंसू देखकर मैं हैरान हो रहा हूं। वजीर ने कहा कि मैं इसलिए नहीं रोता हूं कि मेरी मौत करीब आ गयी है। रोता हूं किसी और बात से। रोता हूं आपके घोड़े को देखकर। राजा ने कहा, मेरे घोड़े को देखकर रोने की क्या बात है ? उस वजीर ने कहा कि मैंने बरसों मेहनत करके एक कला सीखी थी। मैंने एक विज्ञान सीखा था कि घोड़े को मैं उड़ना सिखा सकता था। लेकिन जिस जाति का घोड़ा उड़ना सीख सकता था, वह मेरे जीवन में मुझे नहीं मिला और जिस घोड़े पर आप बैठकर आये हैं, यह उसी जाति का घोड़ा है। इसीलिए आंखों में आसूं आ गये कि सारा जीवन जिस कला को सीखने में व्यर्थ गया, वह आज मेरे सामने आ जायेगी। राजा ने सोचा कि अगर घोड़ा उड़ना सीख जाय तो अदभुत बात होगी। तो उसने कहा कि इसमें घबराने की बात नहीं, मत रोओ। कितनी देरी लगेगी कि यह घोड़ा उड़ना सीख जाय ? वजीर ने कहा कि केवल एक वर्ष। राजा ने कहा कि अगर घोड़ा उड़ना सीख गया तो मृत्यु के दन्ड से तुम बच ही जाओगे, फिर से तुम्हें वजीर बना देंगे और बहुत धन, सम्पत्ति जो तुम चाहोगे, दूंगा। रहा यह, अगर वर्ष भर बाद घोड़ा उड़ना नहीं सीखा तो तुम्हें फांसी लगा दूंगा। वर्ष भर बाद फांसी दूंगा।

वजीर घोड़े पर बैठकर घर लौट आया। घर पर तो लोग रो रहे थे कि उसे फांसी हो गयी होगी। जब वह घर पहुंचा तो उसे देखकर सब हैरान हुए। लोगों ने पूछा कि तुम कैसे लौट आये ? उसने सारी कथा बतायी तो भी उसकी पत्नी रोती रही, उसके बच्चे रोते रहे। वजीर ने कहा कि तुम सब बन्द करो रोना। उसकी पत्नी ने कहा, कि मैं तो जानती हूं कि तुम घोड़े के उड़ाने की कोई कला नहीं जानते, तो तुमने यह क्या पागलपन किया ! आज नहीं मरना है तो

बरस भर बाद मरना ही है। हमारे लिए तो यह वर्ष भर तुम्हारी मौत की प्रतीक्षा का समय होगा। हम तो दुखी ही हैं। अगर ऐसा ही किया था और धोखा ही दिया था तो कम से कम बीस वर्ष, पचास वर्ष—ऐसा कोई वक्त मांगते। लेकिन वह वजीर हंसने लगा। उसने कहा, तुम जिन्दगी के रिवाज नहीं जानतीं। अरे, साल भर का क्या भरोसा ? मैं मर जाऊं, घोड़ा मर जाय, बादशाह मर जाय। साल भर बड़ी बात है और बीस बरस मांगता तो राजा की हिम्मत नहीं पड़ती, क्योंकि बीस वर्ष बहुत लम्बा समय होता है। एक वर्ष मांगा है, एक वर्ष बहुत लम्बा वक्त है और कुछ भी हो सकता है। मैं मर सकता हूं, घोड़ा मर सकता है, बादशाह मर सकता है, बात टल जायगी।

यह कहानी मैंने उनसे कही और घटना तो ऐसी घटी जिसकी कोई कल्पना नहीं थी। वे तीनों मर गये उस वर्ष—राजा भी, वजीर भी, घोड़ा भी। यह उनसे कहा। फिर वह नाला उतर गये और अपनी गाड़ी लेकर चले गये। जाते जाते मुझसे बोले कि जल्दी लौटकर आता हूं आपसे मिलूंगा। उन्होंने वही बात कही। बातें हमारी कुछ ऐसी होती हैं कि कितना ही कहा जाय फिर भी वही वही कहने और करने लगते हैं। मेरे लिए तो रोज ही वही मामला है, वही समझाता हूं, वही पूछता हूं। फिर भी मुझसे उल्टी बात कोई पूछने चला आता है। उन्होंने फिर जाते वक्त यही कहा था कि लौटकर आकर आपसे जरूर मिलूंगा। मुझे बहुत आनन्द हुआ, मैं हंसने लगा। उनकी गाड़ी निकल गयी, फिर पीछे मेरी गाड़ी निकली। दो मील के बाद ही मैंने उन्हें मरा हुआ पाया। उनकी गाड़ी तो टकरा गयी थी और वे समाप्त हो गये थे। मेरा जो ड्राइवर था, वह कहने लगा कि यह तो बड़ी अजीब बात हुई, अभी-अभी आपने यही तो कहा था।

मौत से बड़ा कोई सत्य नहीं

यह मैं आपसे कहता हूं कोई पक्का भरोसा नहीं है। आप घर जायें और वहां पहुंच जायें, कोई पक्का भरोसा नहीं है। आज पहुंच जायेंगे, कल नहीं पहुंच सकेंगे और कल पहुंच जायेंगे, परसों नहीं पहुंच सकेंगे। आखिर कितनी देर बचेंगे। एक दिन तो होगा कि नहीं पहुंच पायेंगे। उसे दूर करके देखने से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि दस साल बाद वह दिन होगा कि बीस साल बाद वह दिन होगा। जो जानता है, वह उसे आज की रात ही करके देख लेता है। आप यही सोच के जाइये कि कल नहीं उठ सकेंगे, फिर क्या करना है ? ऐसा ही सोच के जाइये कि कल सुबह नहीं होंगे, फिर क्या करना है ? एक दिन तो जरूर ऐसी सुबह

होगी कि आप नहीं होंगे। इसे तो पक्का मान लीजिए। इसमें तो कोई शक का कारण नहीं। इसे समझने की भी जरूरत नहीं। एक दिन तो पक्का ऐसा होगा कि सूरज उगेगा और आप न होंगे। बहुत लोग जमीन पर थे वे अब नहीं हैं। आप हैं, आप भी न होंगे। जिन्दगी में मृत्यु से ज्यादा निश्चित कुछ भी नहीं है, लेकिन उसपर ही सबसे कम विचार है और सब अनिश्चित है और सब संदिग्ध है। हो सकता है परमात्मा हो या न हो। हो सकता है आत्मा हो या न हो, हो सकता है कि यह सब जो दुनिया हम देख रहे हैं हो या न हो, हो सकता है सपना हो—फिर भी एक बात निश्चित है, एक बात में कोई सन्देह नहीं कि जो यहां है वह सदा यहां नहीं है। **एक बात निश्चित है कि मौत है। मौत से बड़ा कोई सत्य नहीं है।** लेकिन हम सब उसे पीठ के पीछे किये रहते हैं और अपने मरने की बात तो कोई सोचता नहीं। अगर कोई आप को याद दिलाये तो आप कहेंगे कि यह अपशकुन की बात है, मत करो। ऐसी बातें मत करो। मरने की बातें क्या करनीं। मरने की बात हम दूर रखते हैं और उससे हाथ भर दूर रहते हैं, लेकिन आप कितना भी दूर रहो, मौत को आपसे बड़ा प्रेम है, वह ज्यादा दिन दूर नहीं रहेगी। जो जीवन पर विचार करेगा, वह पायेगा कि मृत्यु सर्वाधिक्य निश्चित है, तो फिर क्यों नहीं इस सर्वाधिक्य निश्चित तथ्य को ही चिन्तन का प्राथमिक तत्व बना लिया जाय, तो फिर क्यों न इसको ही सोचकर जीवन का दर्शन खड़ा किया जाय। फिर जो भी फिलासफी हो जीवन की, फिर जो भी जीवन का दर्शन हो, वह क्यों न इस मृत्यु की बुनियाद पर ही खड़ा हो, क्योंकि यही निश्चित आधार है और बाकी सब आधार अनिश्चित हैं। इसको ही क्यों न हम बुनियाद में रख लें और जिस तथ्य से आज नहीं कल मुकाबला करना ही होगा उसे पकड़ कर आज ही क्यों न मुकाबला कर लें। जो आज उससे मुकाबला करने को राजी हो जाता है, जो आज उस पर चिन्तन करने लगता है उसके पूरे जीवन की गति और दिशा बदल जाती है। उसका जीवन कुछ से कुछ और ही हो जाता है। जो मृत्यु का आज ही चिन्तन करने में समर्थ है और आज ही चिन्तन करने का साहस करता है, आज ही उसको सामने ले लेता है, पीछे से हटा देता है, आज ही उसे स्वीकार कर लेता है– उसके कदम, उसकी श्वासें फिर मृत्यु की दिशा में चलनी बन्द हो जाती हैं। उसके समक्ष फिर एक नया मार्ग और एक नया द्वार खुलता है। वह मार्ग कैसे खुल संकता है उसकी मैं बात करूंगा।

नयी खोज की प्यास

आज की रात तो इस छोटे से ही विचार को आपके मन म डाल देना चाहता हूं कि इस पर आप सोचेंगे और इस तथ्य को सामने ले लेंगे। आज रात सोते वक्त मृत्यु पर विचार करते ही सोइये, ताकि सुबह जब उठें तो कल दिन जो आप काम करें उसमें बार बार आपको यह ख्याल आ सके कि यह जो मैं कर रहा हूं, वह जो हो रहा है, यह जो मैं बना रहा हूं, यह जो मैं इकट्ठा कर रहा हूं–यह सब उस अन्तिम मृत्यु के समक्ष कोई अर्थ नहीं रखता है। मैं नहीं कहता हूं इसे छोड़कर भाग जायें, न यह कह रहा हूं कि इसे बन्द कर दें। मैं कह रहा हूं कि आपके समक्ष यह स्पष्ट हो जाय कि मृत्यु के समक्ष, मृत्यु के सामने, मृत्यु की मौजूदगी में मेरा यह किया हुआ कोई भी अर्थ नहीं रखता है। इतना ही स्पष्ट हो जाना पर्याप्त है। इसे छोड़ने को नहीं कह रहा हूं। इसे छोड़कर भागने को नहीं कह रहा हूं। इतना बोध स्पष्ट हो जाना चाहिए और तब आपके जीवन में **एक नयी खोज की प्यास** अपने आप शुरू हो जायगी। एक नयी प्यास आप अनुभव करेंगे। यह सब चलेगा ऐसा ही जैसा चलता है। इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन इसके किनारे किनारे एक नयी गति भी शुरू हो जायेगी। और धीरे धीरे आप पायेंगे कि काम तो आप यही सब कर रहे हैं लेकिन प्राण आपके इस काम में नहीं रहे हैं। काम तो आप यही सब कर रहे हैं, लेकिन अब आपका शरीर ही है इसमें, आपकी आत्मा ने किसी और दिशा को अंगीकार कर लिया है। संसार में जो भी है, जीवन में जो भी है उसे उसमें बहुत कुछ करना पड़ेगा, जो केवल शरीर को ही बनाये रखने के लिए जरूरी है। लेकिन इतने पर ही सब समाप्त नहीं हो जाता और भी कुछ है भीतर। उसे पाने, उसे विकसित करने के लिए कुछ और भी जरूरी है। इसे छोड़कर नहीं है, इसके विरोध में नहीं है वह। इससे भाग कर नहीं है, वह यहीं मौजूद है। और अगर उसकी दिशा स्पष्ट हो जाय और उसकी आकांक्षा स्पष्ट हो जाय, तो यह सब व्यर्थ दीखते काम भी उस बृहत्तर कार्य में सार्थक अंग बन सकते हैं। यह जो रोटी कमाना है, यह जो वस्त्र पहनना है, यह जो मकान बनाना है यह भी सार्थक हो सकता है। अगर आत्मिक दिशा में कोई चरण पड़ने शुरू हो जायें तब यह सब उस आत्मा के लिए ही अर्थपूर्ण हो जायगा और तब यह सब भूमिका बन जायेगी और आधार बन जायगा। शरीर आत्मा तक पहुंचने के लिए सीढ़ी बन जाता है। और यह जो सब सारे काम हैं, यह जरूर क्षुद्र से काम हैं। आत्मा की दिशा की ओर अगर यह मन गति न

करता हो, तो सब अपने आप में बिल्कुल व्यर्थ है। लेकिन अगर गति करने लगें प्राण उसके सामने, तो यह सब काम भी सार्थक हो जाता है।

परमात्मा और संसार में कोई बुनियादी भेद नहीं है। परमात्मा और संसार में कोई शत्रुता नहीं है। लेकिन संसार अपने आप में अकेला व्यर्थ है और अगर वह परमात्मा के केन्द्र पर घूमने लगे तो सार्थक हो जाता है। महावीर भी भोजन करते हैं और श्वास लेते हैं, कृष्ण भी पानी पीते हैं और क्राइस्ट भी कपड़े पहनते हैं, लेकिन बहुत फर्क है। बहुत फर्क है। हम सिर्फ कपड़े ही पहनते हैं और आगे मामला कुछ भी नहीं है। हम केवल शरीर को बचाये जाते हैं लेकिन आगे किस लिए और क्यों, हम भोजन किये जाते हैं? लेकिन शरीर को बचाने की उपयोगिता क्या है? हम केवल साधन को ही संभालते रहते हैं और समाप्त हो जाते हैं क्योंकि जीवन में कोई साध्य नहीं है। साधन सार्थक हो सकता है यदि साध्य हो। साधन अपने में तो बिलकुल व्यर्थ होता है, उसकी कोई सार्थकता नहीं। एक आदमी एक रास्ता बनाये। एक ऐसा आदमी जिसे कहीं भी न जाना हो और वह जिन्दगी भर रास्ता बनाये और रास्ता तोड़े, जंगल काटे, गिट्टियां बिछाये, रास्ता बनाये, और आप उससे पूछें कि यह रास्ता किस लिये बना रहे हो और वह कहे कि मुझे कहीं जाना तो नहीं है, तो रास्ता बनाना व्यर्थ हो गया।

आखिर क्यों ?

हम सब ऐसे ही रास्ते बनाते हैं जिन्हें कहीं जाना नहीं है। जिसे परमात्मा तक नहीं जाना है उसका जीवन ऐसा ही रहता है जिसे वह बना रहा है, लेकिन जायगा नहीं। जिसके पांव परमात्मा तक जाने को आकांक्षी हो गये हैं, उसका यह सारा क्षुद्र जीवन, यह सारी छोटी–छोटी गिट्टियों का बिछाना और मिट्टी का भरना और जंगल का काटना और रास्ता बनाना सार्थक हो जाता है। रास्ता हम सब बनाते हैं, पहुंचते हम में से बहुत थोड़े हैं, क्योंकि रास्ता बनाते वक्त हमें पहुंचने का कोई ख्याल ही नहीं है। ज्यादा महत्वपूर्ण है कि मैं पूछूं कि मैं क्यों जीना चाहता हूं, बजाय इसके कि मैं जीने के लिए व्यवस्था करता जाऊं। ज्यादा उचित है कि मैं पूछूं कि मैं क्यों होना चाहता हूं, बजाय इसके कि होने की रक्षा करता चला जाऊं।

ये विचार, ये प्रश्न आपके मन में पैदा होने चाहिए। हमारे मन में बहुत कम प्रश्न पैदा होते हैं, प्रश्न पैदा ही नहीं होते और जब प्रश्न ही पैदा नहीं होते और जिज्ञासा पैदा नहीं होती, तो खोज कैसे पैदा होगी ? और खोज की

आकांक्षा नहीं होगी, तो उस दिशा में श्रम कैसे होगा? तो वह तो सारी बात इन तीन दिनों में मैं धीरे धीरे आपसे करूंगा। आज की रात इतना ही कहता हूं कि मृत्यु को साथ लेकर सोयें, उस पर सोचते हुए सोयें कि वह आपके पास सोयी हुई है और उसे निरन्तर समक्ष रखें, साथ रखें। वह साथ है। उसे साथ रखें जो मृत्यु को साथ रख लेता है और उसे संगी बना लेता है और मित्र बना लेता है। यह स्मरण रखें, बहुत ज्यादा देर नहीं है कि परमात्मा उसके पास होगा। उसने पहला कदम उठाया है। मृत्यु के साथ जिसने दोस्ती की है और उसे साथ लिया है उसने पहला कदम उठा लिया है, अमृत उसके साथ होगा। आज नहीं–कल, देर अबेर परमात्मा उसके निकट होगा। मृत्यु के ही साथ हो जाने में सारी बात छिपी है। उसको मैं साधक कहता हूं जिसने मृत्यु को साथ ले लिया है। उसको मैं संसारी कहता हूं जो मृत्यु से भाग रहा है, बच रहा है और उसे साथ नहीं ले रहा है।

और ज्यादा नहीं कहूंगा। शिविर की चर्चा तो कल सुबह से शुरू करूंगा। यह तो भूमिका के लिए कि आपके मन में अगर साधना का कोई भी जन्म हो सकता है, वह तभी हो सकता है जबकि साधक होने की इस पहली शर्त को आप पूरा कर लें। मौत से मुंह मत मोड़िये। उसकी आंखों को देखिये, उसको निकट ले लीजिये। आज उसके साथ ही सोइये, उस पर ही विचार करते हुए, अपनी मृत्यु पर विचार करते हुए, उसे अपने निकट जानते हुए कि वह कभी भी हो सकती है, किसी भी क्षण। कल सुबह ही आपके मन में कुछ और प्रश्नों को जन्म मिलेगा। अगर मिले तो मैं यहां तीन दिन हूं, उन प्रश्नों को मुझसे पूछ लें, उनकी चर्चा कर लें। अगर नहीं मिले, अगर मृत्यु को निकट लेने से कोई ख्याल न आता हो, तो दुबारा सुबह यहां न आयें। उसका कोई मतलब नहीं, उसका कोई अर्थ नहीं।

अगर आपको अपनी मृत्यु से कोई ख्याल न आता हो, तो फिर कल सुबह यहां न आयें। उसकी कोई सार्थकता नहीं, क्योंकि मैं जो कुछ भी कह सकता हूं, वह उसके बाद ही महत्वपूर्ण है। जब आपको अपनी मृत्यु का दर्शन होने लगा हो और आपके मन में यह चिन्ता और विचार आने लगा हो कि मैं क्या करूं? चारों तरफ से मौत घेरे हुए है, मैं क्या करूं? मैं कैसे ऊपर उठ जाऊं? चारों तरफ से सब नष्ट होने वाला है, तो फिर मैं अविनश्वर को पाने के लिए कौन सा मार्ग खोजूं?

कल आपका आना तभी अर्थपूर्ण है और मैं कुछ कहूंगा वह तभी सार्थक है, क्योंकि मैं उसी सेतु को बनाने की बात करूंगा, जो मृत्यु से अमरत्व तक ले जाता है। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से आप लोगों ने सुना है उससे मैं बहुत बहुत अनुग्रहीत हूं। परमात्मा आपको मत्यु से निकट का बोध दे, इसकी प्रार्थना करता हूं।

★

संदेह नहीं तो खोज कैसे होगी? संदेह नहीं तो असंतोष कैसे होगा? संदेह नहीं तो प्राण सत्य को जानने और पाने को आकुल कैसे होंगे? ध्यान रहे—श्रद्धा और विश्वास बाँधते हैं, संदेह मुक्त करता है।

मलाड साधना शिविर में
आचार्यश्री का द्वितीय उद्‌बोधन

साधना के चरण : अविचार बोध

कल रात्रि को मृत्यु के सम्बन्ध म थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही। जीवन की खोज को मृत्यु से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। जीवन को जानना और पाना हो तो केवल वे ही सफल और समर्थ हो सकते हैं जो मृत्यु के तथ्य से खोज को प्रारम्भ करें। यह देखने में उल्टा मालूम पड़ता है। यह बात उल्टी मालूम पड़ती है कि हमें जीवन को खोजना हो तो हम मृत्यु से प्रारम्भ करें, लेकिन यह बात उल्टी नहीं है। जिसे भी प्रक श को खोजना हो उसे अन्धेरे से ही प्रारम्भ करना होगा। प्रकाश की खोज का अर्थ है कि हम अन्धरे में खड़े हैं और प्रकाश हमें उपलब्ध नहीं है। प्रकाश की खोज का अर्थ है कि हम अंधकार में हैं और प्रकाश हमसे दूर है, अन्यथा उसकी खोज ही क्यों करते। प्रकाश की खोज अन्धकार से ही शुरू होगी और जीवन की खोज मृत्यु से। जीवन की हमारी खोज है, उसका अर्थ है हम मृत्यु में खड़े हैं और जबतक इस तथ्य का स्पष्ट बोध न हो तबतक कोई कदम आगे नहीं बढ़ाये जा सकते।

कल प्रस्तावित रूप से, प्राथमिक रूप से मैंने मृत्यु के सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें आपसे कहीं और निवेदन किया कि मृत्यु को पीछे न रखें, सामने ले लें। मृत्यु से बचें नहीं, उसका सामना करें। मृत्यु से भागें नहीं, उसे भुलायें नहीं, उसकी सतत स्मृति ही सही हो सकती है। इन तीन दिनों में तीन बातों पर

विश्वास अविचार का सामर्थ्य है,
श्रद्धा अविचार को घनीभूत कर देती है,
सन्देह अविचार को तोड़ता है,
सन्देह करना बहुत बड़ा तप है।

संकलन : श्री शिव

सुबह में आपसे चर्चा करूंगा और सन्ध्या आपके प्रश्नों का उत्तर दूंगा। आज सुबह मृत्यु पर जो चर्चा हुई उसके ही सन्दर्भ में दो बातें एक ही केन्द्र पर आपसे कहना चाहता हूं—केन्द्र होगा अविचार। तीन शब्द इन दो दिन की चर्चा के लिए मैंने चुने हैं। आज अविचार पर चर्चा करूंगा, कल विचार पर और परसों निर्विचार पर।

अविचार का अर्थ है, चित्त की ऐसी दशा जहां हम अन्धे होकर जीते हैं और कोई विचार नहीं करते हैं। विचार से अर्थ है चिन्तनपूर्वक सचेतन रूप से जीना और निर्विचार का अर्थ है विचार से भी ऊपर उठ जाना और समाधीन जीना। तीन सीढ़ियां हैं। आज अविचार पर आपसे बात करूंगा।

साधारणतया हम सब अविचार की स्थिति में हैं, हम सब 'भाटलैसनेस' में हैं। जीवन में हमारे कोई विचार नहीं हैं। हम जीते हैं अन्धी आकांक्षा की प्रेरणा पर। जीते हैं अन्धी वासनाओं के धक्के पर। उन सारी वासनाओं के लिए हम उत्तर नहीं दे सकते कि क्यों? क्योंकि उत्तर वहीं दिया जा सकता है जहां जीवन में विचार का प्रारम्भ हुआ हो। भूख लगती है, प्यास लगती है, वासनाएं उठती हैं, हम उन्हें पूरा करने में संलग्न भी होते हैं। लेकिन क्यों? इस का कोई उत्तर इस तल पर देना सम्भव नहीं है। भूख लगती है इसलिए भोजन की खोज करते हैं, लेकिन भूख की क्या जरूरत है और भोजन की क्या जरूरत है? यह हमारे विचार का हिस्सा नहीं बनता है और न बन सकता है। विचारशील से विचारशील व्यक्ति को भी भूख लगती है और उसका कोई उत्तर नहीं है। जैसे पूरी प्रकृति अन्धी होकर जी रही है, हम भी जीते हैं। बरसा होती है, धूप होती है, सूरज निकलता है, रात होती है, क्यों? कोई उत्तर नहीं है। बीज से अंकुर पैदा होता है, वृक्ष बनता है, पत्ते निकलते हैं, फल लगते हैं, फूल लगते हैं, क्यों? कोई उत्तर नहीं है। पशु-पक्षी हैं, कीड़े-मकोड़े हैं, मनुष्य भी हैं, क्यों? यह सारा अस्तित्व जिस तल पर हम जी रहे हैं, बिना किसी उत्तर के है। हम हैं और जीवन की प्रबल आकांक्षा है इसलिये जिये जाते हैं। लेकिन क्यों

हैं, और जीवन की प्रबल आकांक्षा क्यों है? इसका कोई उत्तर हमारे पास नहीं है और किसी मनुष्य के पास कभी नहीं रहा है। यह अविचार का तल है। मैं आपको गाली देता हूं। आपके भीतर क्रोध पदा होता है। यह क्रोध क्यों पैदा होता है? गाली देने से, आपको कोई धक्का देता है—आपके मन में हिंसा पैदा होती है। क्यों पैदा होती है? कोई आपको सुन्दर मालूम होता है। क्यों मालूम होता है? कोई असुन्दर मालूम पड़ता है, क्यों? कोई पसन्द पड़ता है, कोई नापसन्द। कोई प्रीतिकर लगता है, कोई दूर भागने जैसा लगता है। किसी को निकट रखने की इच्छा होती है, किसी को दूर हटा देने की। शायद ही आपने पूछा हो, यह क्यों है? और पूछेंगे तो भी कोई उत्तर नहीं उपलब्ध होगा, खाली प्रश्न गूंजता रह जायगा और कोई उत्तर नहीं पाया जा सकता है। शरीर के तल पर, प्रकृति के तल पर कोई उत्तर नहीं है। निरुत्तर हम जिये जाते हैं और इसलिये जब मौत भी आयेगी तो उसके लिये कोई

अतीत की अर्थहीन पूजा बहुत हो चुकी।
क्या अब यह उचित नहीं है कि भविष्य के
सूर्योदयों के लिये हमारे हृदय में प्रार्थनायें हों!

उत्तर नहीं दिया जा सकता है, और न जन्म के लिये कोई उत्तर दिया जा सकता है कि मैं क्यों पैदा हुआ? और न मृत्यु के लिये कोई उत्तर हो सकता है कि मैं क्यों मर गया? न भूख के लिये कोई उत्तर था, न प्यास के लिये, न वासना के लिये, न किसी और व्यक्ति के लिये उत्तर था। तो आखिर में मृत्यु के लिये भी उत्तर नहीं हो सकता था। जैसा जन्म को स्वीकार किया है वैसा ही एक दिन मृत्यु को भी स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। यह विचार का तल है, वृत्ति का तल है, यह कोई उत्तर नहीं है। अधिक लोग इसी के तल पर जीते हैं और बिना उत्तर के जीते हैं। और जो जीवन बिना उत्तर के है, वह व्यर्थ है। उसकी सार्थकता स्वयं के समक्ष भी प्रकट नहीं है।

मेरे एक मित्र हैं। अभी-अभी उन्होंने आत्मघात कर लिया। वे विचारशील थे। बहुत सोचते थे। मरने के कोई दो महीने पहले मुझसे मिलने आये थे और इधर वर्षों से मरने का भी चिन्तन करते थे और बार-बार सोचते थे कि अपने को समाप्त कर लूं। मुझसे पूछने आये कि मैं अपने को समाप्त करना चाहता हूं। जिस तरह

का जीवन है, मुझे कोई अर्थ, कोई मीनिंग नहीं दिखायी पड़ता। मुझसे पूछने आये थे कि आपकी क्या राय और क्या सलाह है ? मैंने उनसे कहा कि अगर आपको मृत्यु में कोई अर्थ दिखायी पड़ता हो, तो जरूर अपने को समाप्त कर लें। जीवन में तो कोई अर्थ दिखायी नहीं पड़ता है तो क्या मृत्यु में कोई अर्थ दिखायी पड़ता है ? वे बोले, 'उसमें भी मुझे कोई अर्थ दिखायी नहीं पड़ता है।' तो मैंने कहा, इस जीवन को समाप्त कर दें तो भी कोई फर्क न होगा। यह व्यर्थता वहीं खड़ी रहेगी। जीवन भी व्यर्थ है, मृत्यु भी व्यर्थ होगी। क्यों का कोई कारण नहीं। और हम में से भी अधिक लोग इसीलिये जिये जाते हैं कि जीकर क्या करेंगे ? मरने से भी क्या होगा? इसलिये जीते हैं, यह कोई जीवन नहीं है। मृत्यु के विकल्प में भी कोई अर्थ नहीं है, इसलिये जिये चले जाते हैं। फिर तो उन्होंने अंत में दो महीने के बाद आत्मघात कर भी लिया। मुझे एक पत्र लिखा। उस पत्र में लिखा कि मैं तो अन्ततः इस निर्णय पर पहुंचता हूं कि अब अपने को समाप्त कर दूं। इधर पचास वर्षों में बहुत से लोगों ने अपने को समाप्त किया है। ऐसे लोगों को जीने का कोई दुख और कोई कष्ट नहीं था, कोई आर्थिक असुविधा भी नहीं थी, लेकिन केवल इसलिये समाप्त किया है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं मालूम पड़ा। आप भी विचार करेंगे, आप भी सोचेंगे, आप भी चिन्तन करेंगे तो शायद ही कोई अर्थ पायें कि मैं क्यों जिऊं। अगर आपके पास जीने के लिये कोई उत्तर नहीं है तो आपके जीवन में न कोई गहराई हो सकती है और न कोई अनुभूति हो सकती है। यह जीना और न जीना करीब करीब बराबर है। है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। मेरे देखे, शरीर के तल पर जीवन का कोई उत्तर नहीं मिल सकता है और हम सारे लोग शरीर के तल पर ही जीते हैं। भूख लगती है, प्यास लगती है, वस्त्र चाहिये, मकान चाहिये इसलिये जीते हैं। थोड़ी देर को सोचो, अगर आपके लिए सब मिल जाय—भूख तृप्त हो जाय, प्यास तृप्त हो जाय, आपकी वासनायें तृप्त हो जायें, जो आपको चाहिये मिल जाय, तो आप क्या करेंगे ? सिवाय मरने के आपके पास कोई उपाय न होगा।

जीवन के तीन तल

अगर आपकी सारी इच्छायें तृप्त हो जायें, तो आप क्या करेंगे ? आप अनन्त निद्रा में सो जायेंगे। तभी तो जब तक आपकी इच्छा आपको दौड़ाती है, आप दौड़ते हैं। जब कोई काम नहीं तो सिवाय सोने के आपके पास कुछ नहीं रह जाता। तो अगर आपकी इच्छायें तृप्त कर दी जायें तो आपके पास सिवाय मरने के कुछ भी न होगा। शरीर के तल पर कुछ परेशानियां हैं, उनको पूरा करने के लिये

हम जीते हैं । लेकिन शरीर तो मरेगा ही, क्योंकि शरीर जन्मा है । जो जन्मा है, उसकी मृत्यु होगी । जो शुरू हुआ है, उसका अन्त होता है । शरीर के तल पर जो जीवन है, वह अनिवार्य रूप से मृत्यु को ले जाने वाला है । इसमें न कोई दो मत हैं और न हो सकते हैं । शरीर के तल पर तो कोई अर्थ, कोई मीनिंग नहीं पाया जा सका है । क्या और किसी तल पर कोई अर्थ और मीनिंग पाया जा सकता है ? शरीर तो बिलकुल प्रकृति का बंधा हुआ यंत्र है । प्रकृति जैसे यांत्रिक रूप से चलती है, वैसे ही शरीर भी चलता है । वहां कोई भी स्वतन्त्र नहीं है । वहां सब परतंत्र है । महावीर का शरीर भी परतंत्र है, कृष्ण और क्राइस्ट का भी और आपका भी । क्योंकि महावीर भी मर जाते हैं, और कृष्ण और क्राइस्ट भी । शरीर के तल पर आज तक कोई भी स्वतन्त्र नहीं हुआ है और न शरीर के तल पर आज तक अमृत जीवन को पाया जा सकता है । किसी ने भी नहीं पाया और न कभी कोई पा सकेगा । शरीर मरणधर्मा है । अमृत वहां नहीं है । शरीर मृत्यु का घर है । जीवन वहां नहीं है । यदि हम उसी घेरे में घूमते हैं, तो जैसा मैंने कल रात आपको कहा, हम कुछ भी करें, हम मृत्यु को पहुंच जायेंगे । शरीर बिलकुल परतंत्र है । वहां कोई स्वतन्त्रता नहीं है । शरीर के ऊपर, शरीर के बाहर हमारे भीतर क्या कुछ है, जरूर मन की कुछ झलकें मिलती हैं । हर मनुष्य को अपने मन का बोध होता है, विचार के चरण, पदचिन्ह सुनायी पड़ते हैं । चिन्तन चलता है, सोच विचार होता है । मन की कुछ खबर मिलती है, क्योंकि मन है । शरीर—मैंने कहा, अनिवार्य रूप से परतंत्र है । मन अनिवार्य रूप से परतंत्र नहीं है । मन स्वतंत्र हो सकता है लेकिन सामान्यतया मन भी परतंत्र है । मन के तल पर भी हमारे जीवन में कोई स्वतंत्रता नहीं है । मन के तल पर भी हम परतंत्र हैं । शरीर के तल पर वासनायें और वृत्तियां पकड़े हुये हैं । मन के तल पर विश्वास पकड़े हुये है । मन के तल पर शब्द और शास्त्र और सिद्धान्त पकड़े हुये हैं । मन भी दास है और मन भी परतंत्र । लकीरों में दौड़ता है और चलता है । वहां भी कोई स्वतंत्रता नहीं है, लेकिन मन स्वतंत्र हो सकता है । यह फर्क है शरीर और मन में । शरीर परतंत्र है और स्वतंत्र नहीं हो सकता है । मन भी परतंत्र है, लेकिन स्वतंत्र हो सकता है । उसके पार भी एक तत्व है, उसकी मैं चर्चा करूंगा, उस दिशा में हम काम करेंगें । उसे आत्मा कहा है । कुछ और भी कहा जा सकता है । आत्मा स्वतंत्र है और परतंत्र नहीं हो सकती है ।

शरीर व मन की परतंत्रता

ये तीन तल हैं जीवन के । शरीर परतन्त्र है और स्वतन्त्र नहीं हो सकता

है। मन परतन्त्र है लेकिन स्वतन्त्र हो सकता है। आत्मा स्वतन्त्र है और परतन्त्र होने में असमर्थ है। लेकिन इस आत्मा में जो अनिवार्य रूप से स्वतंत्र है और जो जीवन्त है, जो मृत है और जिसकी कोई मृत्यु और कोई जन्म नहीं। इसे जानने में केवल वही मन समर्थ हो सकता है जो स्वतन्त्र हो। यदि मन परतंत्र हो तो शरीर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जान पायेगा। परतंत्र मन परतंत्र शरीर के बाहर आंखें नहीं उठा सकता है। मन जब तक परतंत्र है, तब तक हम जानेंगे कि हम शरीर से ज्यादा नहीं हैं। मन यदि स्वतंत्र है तो मन की आखें उसे आत्मा की तरफ भी उठानी शुरू हो जायेंगी, जो कि स्वतंत्र है और जो कि जीवन्त है। इसलिये न प्रश्न शरीर का है और न प्रश्न आत्मा का है। सारा प्रश्न जीवन की साधना का है। मन ऊपर केन्द्रित है, मन परतंत्र है तो जरूर शरीर से ऊपर नहीं हो सकता है अर्थात् जीवन को मृत्यु में ले जायेगा। मन यदि स्वतंत्र है तो जीवन की आंख अमृत की ओर उठनी शुरू हो सकती है। क्या हमारा मन स्वतंत्र है या परतंत्र ? हमारे मन आमतौर से परतंत्र हैं। हमारे मनों ने कोई स्वतंत्रता नहीं मानी है। हम केवल वस्त्र ही दूसरे जैसा नहीं पहनते हैं, भोजन ही दूसरे जैसा नहीं करते हैं, हम विचार भी दूसरों जैसा ही करते हैं। विचार के तल पर भी हम अनुगामी हैं किसी के। जो अनुगामी है, वह परतंत्र है। जो किसी को 'फालो' करता है, जो किसी के पीछे चलता है, वह परतंत्र है। शरीर के तल पर हम परतंत्र हैं। मन के तल पर भी हम अपने को परतंत्र बनाये हुये हैं। क्या एकाध विचार कभी आपने सोचा है या कि सब विचार आपने उधार ले लिये हैं ? क्या कभी एकाध विचार का आपके भीतर जन्म हुआ है या किसी के विचार आपने इकट्ठे कर लिये हैं? बहुत विचार आपके मन में होंगे उनपर थोड़ा देखें और देखेंगे तो पायेंगे कि वे कहीं से आये हैं और आपके भीतर इकट्ठे हो गये हैं। जैसे वृक्षों पर सांझ को पक्षी आकर बैठ जाते हैं ऐसे हमारे मन में विचारों ने आकर डेरे बनाये हैं। वे सब विचार दूसरों के हैं, पराये हैं और उधार हैं। केवल वही मनुष्य अपने को मनुष्य कहने का हकदार बनता है जो एकाध विचार की अनुभूति को स्वयं उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है। उसके भीतर स्वतंत्रता की शुरुआत होती है अन्यथा हम परतंत्र हैं। सारे मनुष्य परतंत्र हैं और उनकी परतंत्रता का आधार इस बात में है कि उन्होंने खुद कभी कोई विचार नहीं किया है। उन्होंने सब विचार स्वीकार कर लिये हैं। उन्होंने हां भर दी है, उन्होंने आस्था कर ली है, उन्होंने श्रद्धा कर ली है, उन्होंने विश्वास कर लिया है।

केवल पुनरावृत्ति

हजारों वर्षों से विश्वास सिखाया जाता है, विचार नहीं। जो विश्वास सिखाया जाता है, विचार नहीं है। हजारों वर्षों से श्रद्धा सिखायी जाती है, चिन्तन नहीं। हजारों वर्षों से मानव को आस्था, मान्यता सिखायी जाती है, मनन नहीं। और परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य जाति निरन्तर परतंत्र से परतंत्र होती चली गयी है। हमारे मन जंजीरों में जकड़े गये हैं जो केवल दोहराते हैं, रिपीट करते हैं, कुछ सोचते नहीं हैं। अगर मैं आपसे कोई भी प्रश्न पूछूं, तो जो भी आप उत्तर देंगे वह करीब करीब दोहरावट होगी, पुनरावृत्ति होगी, रिपिटीशन होगा। चिन्तन नहीं। अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है? तो आपके भीतर जो उत्तर आयेगा, विचार करिये क्या वह उत्तर आपका है? अगर मैं आपसे पूछूं, आत्मा है और आपके भीतर जो भी उत्तर आये, चाहे यह उत्तर आये कि आत्मा है, चाहे यह उत्तर आये कि आत्मा नहीं है, क्या वह आपके विचार से जन्मा है या कि आसपास की हवाओं से आपमें प्रविष्ट हो गया है? आपने किसी शास्त्र से समझ लिया है, किसी गुरु से स्वीकार कर लिया है या आपने जाना है। अगर वह उत्तर आपको ज्ञात हो कि आपका जाना हुआ नहीं है तो आप समझ लें कि आपका मन परतंत्र है।

अपनी अपनी मान्यता

यह तो आत्मा और परमात्मा दूर की बात है। जीवन के बहुत सहज अनुभव भी हमारे अपने नहीं होते हैं, वह भी हम दोहराते हैं। अगर मैं गुलाब के फूल को आपके सामने रखूं और पूछूं कि क्या यह सुन्दर है? शायद आप कहेंगे कि यह सुंदर है। लेकिन इसपर भी थोड़ा विचार करना कि यह भी आपने स्वीकार किया है या स्वयं जाना है? क्योंकि दुनिया में अलग अलग कौमें अलग अलग फूलों को सुन्दर समझती हैं और दुनिया में अलग अलग चेहरे अलग अलग कौमों में सुन्दर समझे जाते हैं। और उन कौमों में जो बच्चे पैदा होते हैं वे सौंदर्य की उन्हीं परिभाषाओं को सीख लेते हैं और जीवन भर दोहराते हैं। जो नाक हिन्दुस्तान में सुन्दर हो सकती है वह चीन में सुन्दर नहीं है। तो फिर आवश्यक हो जाता है कि यह सौंदर्य की अनुभूति हमारी है या हमारे समाज से उपलब्ध हो गयी है। जो चेहरा हिन्दुस्तान में सुन्दर है वह जापान में नहीं है और जो चेहरा निग्रो कौम में सुन्दर मालूम होगा, वह हिन्दुस्तान में नहीं मालूम होगा। हिन्दुस्तान में पतले होंठ सुन्दर हैं और निग्रो के लिये चौड़े होंठ सुन्दर हैं। निग्रो बच्चा जीवन भर यही दोहराता रहेगा कि ये होंठ सुन्दर

हैं और भारत में पैदा हुआ बच्चा यह दोहराता रहेगा कि यह होंठ सुन्दर हैं। कौन सा होंठ सुन्दर है, कौन सा चेहरा, कौन सा फूल, यह भी हमारी अपनी अनुभूति नहीं है। यह भी हम दोहरा रहे हैं। अगर मैं आपसे पूछूं, प्रेम क्या है, तो वह भी आप दोहरायेंगे, वह भी आपने किसी शास्त्र में पढ़ा होगा, वह भी शायद ही आपने जाना हो और खोजा हो। तो यदि हमारा व्यक्तित्व और हमारा चित्त इस भांति दोहरानेवाला है, जो कि प्रतिध्वनि करनेवाला है, तो फिर वह स्वीकार नहीं होगा। कैसे स्वीकार होगा। हम केवल 'इको प्वाइन्ट' हैं। हम केवल दोहरानेवाले बिन्दु हैं। समाज की आवाजें हममें गूंजती रहती हैं, हम उनको दोहराते रहते हैं। हम व्यक्ति नहीं हैं, हम इन्डीविजुअल नहीं हैं, हमारे भीतर व्यक्तित्व का जन्म ही नहीं हुआ है और जिसके भीतर व्यक्तित्व का जन्म नहीं हुआ हो, वह अमृत को कैसे पा सकेगा? आपके पास है ही क्या जिसे आप बचाना चाहते हैं। क्या है आपके पास जिसे आप कह सकें कि मेरा है। मैंने जाना और मैंने जिया। अगर ऐसा कुछ भी नहीं है, तो मृत्यु निश्चित है। यह सब जो समाज से आया है, वापस लौट जायेगा। आपने क्या जन्माया है जो समाज से न आया हो, जो किसी दूसरे से न आया हो, जिसे आप कह सकें निश्चित रूप से, प्रामाणिक रूप से कि मेरा है। अगर ऐसा कुछ भी नहीं, तो आपके भीतर आत्मा के दर्शन कैसे हो सकेंगे? प्रामाणिक रूप से जब चित्त में कुछ मेरा होता है, तो फिर आत्मा की गति शुरू होती है। मैं पात्र होता हूं, आत्मा को जानने में समर्थ होता हूं। व्यक्तित्व का जन्म स्वतंत्र चित्त के बिना सम्भव नहीं है और हमारे चित्त बिलकुल परतंत्र हैं। हमारा मन बिलकुल गुलाम है और मन की गुलामी बहुत गहरी है और हजार हजार वर्षों से हमें गुलामी के लिये तैयार किया जा रहा है। सब भांति हमे गुलाम बनाने की चेष्टा चलती है। चेष्टा में कुछ कर रहे हैं। यह समाज के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। राज्य के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। धर्मों, सम्प्रदायों के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। पुरोहितों, पंडितों के हित में है कि व्यक्ति गुलाम हो। व्यक्ति जितना गुलाम हो, उतना ही उसका शोषण किया जा सकता है और व्यक्ति जितना गुलाम हो, उतना ही उससे विद्रोह की सम्भावना समाप्त हो जाती है। व्यक्ति का मन अगर बिलकुल परतंत्र हो, तो खतरनाक नहीं रह जाता है। विद्रोह और क्रांति असम्भव हो जाते हैं। समाज नहीं चाहता है कि किसी व्यक्ति का चित्त स्वतंत्र हो, इसलिये समाज बचपन से ही व्यक्ति को परतन्त्र करने के सारे उपाय करता है। सारी शिक्षा और सारे संस्कार व्यक्ति के चित्त को गुलाम

बनाने की आधार भूमि बन जाते हैं। इसके पहले कि हमें होश आयें, हम करीब करीब जंजीरों में जकड़ दिये गये होते हैं। जंजीरों के नाम कुछ भी हो सकते हैं—हिन्दू हो सकता है, जैन हो सकता है, भारतीय हो सकता है, अभारतीय हो सकता है, ईसाई, मुसलमान हो सकता है। जंजीरों पर कोई भी मार्क हो सकते हैं, निशान हो सकते, कोई भी नाम हो सकते हैं। लेकिन हजार हजार तरह की जंजीरें हमारे मन को पकड़ लेती हैं और फिर हम उनके ऊपर सोचना बन्द कर देते हैं।

विश्वास क्यों ?

बहुत कम लोग हैं जो सोचते हैं। अधिकतर लोग दोहराते हैं- फिर वे चाहे महावीर को दोहरायें, चाहे बुद्ध को, चाहे गीता को, चाहे कुरान को—इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। जबतक आप दोहराते हैं तबतक आप अपनी आत्मा के साथ सबसे बड़ा पाप करते हैं, जबतक आप किसी को भी दोहराते हैं तबतक आप स्वतन्त्र होने की तैयारी नहीं कर रहे हैं। लेकिन कहा तो यही जाता है कि जो श्रद्धा नहीं करेगा उसे आत्मा नहीं मिलेगी, कहा तो यही जाता है कि जो विश्वास नहीं करेगा वह मोक्ष नहीं पा सकेगा। लेकिन कितनी मूढ़तापूर्ण बात है। विश्वास एक अंधापन है। विश्वास एक परतंत्रता है और मोक्ष परम स्वतंत्रता। विश्वास से कैसे मोक्ष मिलेगा, विश्वास से कैसे आत्मा मिलेगी? विश्वास तो है अंधापन, उसी तल का अंधापन जिस तल का अंधापन शरीर पर है, वासनाओं में। उसी तल का अंधापन मन पर पैदा हो जाय, तो विश्वास है। मैं निवेदन करता हूं कि विश्वास छोड़िये और विचार को जन्म दीजिये। विश्वास की कुछ स्थिति अविचार की स्थिति है लेकिन हम विश्वास क्यों कर लेते हैं। यह तो समझ में आ जाती है बात कि समाज के हित में है विश्वास। शोषण के हित में है विश्वास। मन्दिरों, पुजारियों इनके हित में है विश्वास, क्योंकि इन का सारा व्यापार विश्वास पर है। जिस दिन विश्वास नहीं है उस दिन यह सारा व्यापार टूट जायेगा। यह तो समझ में आता है कि उनके हित में है लेकिन हम क्यों विश्वास कर लेते हैं? मैं और आप क्यों विश्वास कर लेते हैं? हम इसलिये विश्वास कर लेते हैं कि विश्वास बिना मेहनत के उपलब्ध होता है, बिना श्रम के। विचार के लिये श्रम करना होगा, विचार के लिये पीड़ा से गुजरना होगा, विचार के लिये चिन्ता में पड़ना होगा। विचार के लिये कष्ट, हैरानी होगी। विचार के लिये सन्देह में पड़े रहना होगा। विचार में आप अकेले रह जायेंगे। विश्वास में सारी भीड़ आपके साथ है। विश्वास में एक सुरक्षा है,

विश्वास में एक तरह की सीक्योरिटी है। एक तरह का सहारा है। विचार में बड़ी असुरक्षा है। भटक जाने का डर है। भूल होने की सम्भावना है, मिट जाने का डर है। एक तो विश्वास की दुनिया है जहां, राजपथ पर जहां हजारों लोग चल रहे हैं, वहां हम भी चलते हैं, उस भीड़ में हमें कोई डर नहीं मालूम पड़ता है। चारों तरफ लोग ही लोग होते हैं। विश्वास का रास्ता तो भीड़ भरा रास्ता है। विचार का रास्ता अकेलेपन का रास्ता है। वहां आप अकेले होंगे, कोई सहारा नहीं होगा, वहां आसपास कोई भीड़ नहीं होगी। भीड़ ऐसे विश्वास तक करा सकती है, जिनकी आप कल्पना नहीं कर सकते।

अरस्तू की विचित्र बात

प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू ने लिखा है कि स्त्रियों के दांत पुरुषों के दांत से कम होते हैं। यह आदमी बड़ा समझदार था और पश्चिम में तर्क का जन्म-दाता समझा जाता है, पिता समझा जाता है और उसकी एक औरत नहीं थी—उसकी खुद की दो औरतें थीं, लेकिन कभी उसने गिनने की फिक्र नहीं की कि औरत का मुंह खोलकर वह गिन लेता कि उसके कितने दांत हैं। लेकिन हजारों वर्षों से यूनान में यह विश्वास था कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से, कम होते हैं। असल में स्त्रियों की सब चीजें कम होनी ही चाहिएं पुरुषों से, क्योंकि स्त्री तो कुछ नीचे किस्म का पशु है और पुरुष कुछ ऊंचे किस्म का। तो स्त्रियों के दांत पुरुषों के बराबर हो ही कैसे सकते हैं? यह बात तो साफ है ही, इसलिये किसी ने गिनती की फिक्र नहीं की और यूनान में हजारों वर्षों तक यह समझा जाता रहा है कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं और स्त्रियां तो इतनी दयनीय हैं कि पुरुष जो कहता है, उसे स्वीकार कर लेती हैं। उन्होंने खुद भी अपने दांत नहीं गिने। अरस्तू जैसे समझदार आदमी ने भी यह लिख दिया कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होते हैं। अरस्तू के मरने के एक हजार वर्ष बाद तक भी योरोप में यही मान्यता थी कि स्त्रियों के दांत पुरुषों से कम होत हैं, लेकिन किसी समझदार को यह ख्याल न सूझा कि मैं गिन लूं। गिनने का ख्याल तो तभी पैदा हो सकता है जब किसी में विचार पैदा हो! लेकिन अगर विश्वास हो तो गिनने का कोई सवाल नहीं उठता। भीड़ ने हजारों तरह की बेवकूफियां हजार साल तक मानी हैं और उस भीड़ में समझदार से समझदार लोग भी सम्मिलित रहे हैं और उन्हें कभी ख्याल नहीं उठा। क्योंकि सन्देह नहीं था। जिसके मन में सन्देह नहीं उठता है, उसके मन में विचार पैदा हो नहीं सकता है। सन्देह से बड़ी आध्यात्मिक और कोई क्षमता नहीं है। श्रद्धा से बड़ा पाप नहीं, सन्देह से बड़ा धर्म नहीं।

सन्देह उठना चाहिये, क्योंकि सन्देह नहीं उठेगा तो आप समाज से और भीड़ से मुक्त नहीं हो सकते, स्वतंत्र नहीं हो सकते। भीड़ तो समझाती है कि सन्देह मत करना, क्योंकि जो सन्देह करेगा, वह नष्ट हो जायगा। मैं आपसे यह निवेदन करता हूं कि जिसने सन्देह किया है, उसी ने पाया है और जिसने विश्वास किया है वह तो विश्वास करके ही नष्ट हो गया! विश्वास का अर्थ है कि मैं अंधा हूं और मैं मानता हूं जो कहा जाता है। और सन्देह का अर्थ है कि मैं अंधा होने को राजी नहीं हूं। मैं विचार करूंगा और जब तक खुद अनुभव न कर लूं तब तक विश्वास के लिये राजी नहीं हूं। सन्देह में साहस है। विश्वास में आलस्य है। आलस्य के कारण हम विश्वास किये हुये हैं। कौन खोजे? इसलिये जब दूसरे कहते हैं उसे हम विश्वास कर लेते हैं। फिर हजारों वर्ष की जब परम्परा होती है तो उसमें बल होता है, क्योंकि एक विचार होता है कि हजारों वर्ष तक लोग गलत तो नहीं सोच सकते हैं। तो जब हजारों वर्ष तक करोड़ों करोड़ों लोगों ने इस तरह सोचा है, तो ठीक ही सोचा होगा। भीड़ सैंक्शन बन जाती है चीज की सच्चाई का, जब कि भीड़ कभी किसी चीज की सच्चाई का कोई प्रमाण नहीं है। अक्सर तो भीड़, जो मर गये हैं, उनका अनुगमन करती रही थी। भीड़ कोई अनुभव नहीं करती, भीड़ के पास अनुभव करने का कोई उपाय नहीं है। व्यक्ति अनुभव करता है, समाज कुछ भी अनुभव नहीं करता। समाज के पास अनुभूति की कोई आत्मा नहीं है। समाज तो निष्प्राण यंत्र है, इसलिये समाज पर जो निर्भर होता है, वह खुद भी धीरे–धीरे एक यंत्र हो जाता है। उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है।

क्या छोड़ा, क्या पाया?

समाज से मुक्त हुये बिना कोई धार्मिक नहीं हो सकता। यह तो बात सुनी होगी कि संन्यासी समाज को छोड़ कर चले जाते हैं, लेकिन वे छोड़ के जाते नहीं हैं। घर छोड़-कर चले जाते हैं, परिवार छोड़ कर चले जाते हैं लेकिन समाज को कोई संन्यासी छोड़ता नहीं है। जब कोई संन्यासी समाज को भी छोड़ सकता है, तो जीवन सत्य उसे उपलब्ध होता है। समाज को इसलिये नहीं छोड़ता है कि जैनो घर में पैदा हुआ कोई व्यक्ति जब संन्यासी हो जाता है तो संन्यासी होने के बाद भी कहता है कि मैं जैन साधु हूं। घर तो उसने छोड़ा, लेकिन समाज उसने नहीं छोड़ा। पत्नी उसने छोड़ी, लेकिन गुरु उसने नहीं छोड़ा। शरीर के तल पर वह भागा, लेकिन मन के तल पर वह गुलाम है। और शरीर के तल पर भागने का कोई अर्थ नहीं है। सवाल तो मन के तल पर भागने का है। वह

धर्म जो बचपन से उसे सिखाया गया है अब भी उसे पकड़े हुये है। वे जो उत्तर उसे बताये गये हैं, वे अब भी उसके मन में बैठे हुये हैं। वे शास्त्र जो उसे समझाये गये थे अब भी वह दोहराता है। वह मन के तल पर गुलाम है। मैं आपसे कहता हूं कि शरीर के तल पर न भागें। शरीर के तल पर कोई भाग नहीं सकता। वह जो संन्यासी भाग गया है शरीर के तल पर, वह भी नहीं भागा है, क्योंकि वह भी रोटी मांगने समाज में वापस आता है, कपड़ा मांगने समाज में वापस आता है। शरीर के तल पर तो समाज से कोई भागेगा कैसे। मन के तल पर मुक्त हो सकता था। उस तल पर वह मुक्त नहीं हुआ। जिस तल पर मुक्ति हो ही नहीं सकती उस तल पर झूठे दम्भ में पड़ गया है। शरीर के तल पर तो कोई भाग नहीं सकता। शरीर के तल पर तो समूह में जीना है। बड़े ज्ञानी को भी समूह में जीना है। लेकिन मन के तल पर मुक्त हुआ जा सकता है, उस तल पर मुक्त नहीं हुआ है। वहीं मुक्त होना है तो मैं आपसे नहीं कहता कि कोई घर-द्वार छोड़कर चला जाय। वह सब पागलपन है। लेकिन मन की दीवारें गिरा दें, मन के घर गिरा दें और मन के भीतर जो बनाये हुये घेरे हैं, वह तोड़ दें और मन के भीतर जो जंजीरें हैं, उनको नष्ट कर दें तो उसके जीवन में स्वतंत्रता की शुरुआत होगी।

पहला तथ्य है कि सन्देह करें। जो भी सिखलाया गया है, उस पर सन्देह करें। इसलिये नहीं कि वह गलत है। इस बात को समझ लें ठीक से। महावीर पर सन्देह करें, बुद्ध पर सन्देह करें, इसलिये नहीं कि महावीर और बुद्ध जो कह गये हैं, वह गलत है, इसलिये नहीं। विश्वास करना गलत है, इस बात को समझ लें। कुरान पर सन्देह करें, बाइबिल पर सन्देह करें, गीता पर सन्देह करें—इस लिये नहीं कि उनमें जो लिखा है, वह गलत है। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि विश्वास करना गलत है और अगर विश्वास कर लेंगे तो जो उन्होंने लिखा है, जो उन्होंने कहा है, उसे कभी नहीं जान पायेंगे और अगर सन्देह करेंगे तो एक दिन जरूर वह सत्य आपके सामने उद्घाटित होगा जो महावीर और बुद्ध के सामने उद्घाटित हुआ।

विचार एक तप है

सन्देह अविचार को तोड़ता है, श्रद्धा अविचार को घनीभूत कर देती है, विश्वास अविचार का सामर्थ्य है, सन्देह अविचार की स्थिति को तोड़ता है, लेकिन विचार में तो पीड़ा होगी। विचार एक तप है, उपवास तप नहीं। भूखे रह जाना कोई बड़ी तपश्चर्या नहीं है। प्यासे रह जाना, कोई बड़ी तपश्चर्या

नहीं है। सरकस में भी कोई कर सकता है। लेकिन सन्देह करना बहुत बड़ा तप है। सन्देह करने का अर्थ है असुरक्षा में खड़े होने को राजी होना। अज्ञान में खड़े होने को राजी होना। खुद के पैरों पर खड़े होने को राजी होना। सारे सहारे छोड़ देना। और स्मरण रखें, जब तक कोई सहारे को लेकर चलता है तब तक उसके पैर कभी भी चलने में समर्थ नहीं हो सकते और जब तक कोई मन के तल पर विश्वास करता है, तब तक उसका खुद का मन सत्य को खोजने की शक्ति नहीं जुटा सकता है। हम सत्य जुटाते हैं तभी जब हम असुरक्षा में पड़ जाते हैं। शक्ति इकट्ठी तभी होती है, जागती तभी है जब हम असुरक्षा में पड़ जाते हैं। आपसे मैं कहूं कि आप दौड़ेंगे, बहुत धीमे दौड़ेंगे। आपसे मैं कहूं कि पूरी ताकत लगाकर दौड़ें तब भी आप बहुत धीमे दौड़ेंगे। लेकिन अगर आपके प्राणों के पीछे कोई बन्दूक लेकर पड़ जाय, तो आपके पैरों में वह गति आयेगी, जिसकी आपने खुद ही कोई कल्पना नहीं की थी।

राजा और नौकर में द्वन्द्व

एक बार ऐसा हुआ जापान में कि बहुत बड़े राजा का नौकर राजा की रानी के प्रेम में पड़ गया। जैसे ही उस राजा को यह पता चला—यह तो बहुत ही अशोभन और अपमान की बात थी, एक साधारण सा नौकर, एक गुलाम, उसकी रानी को प्रेम करे और रानी उसके प्रेम में पड़ जाय। हालांकि प्रेम जानता नहीं है कि कौन गुलाम है, कौन नौकर है; लेकिन समाज के लिये हिसाब है। प्रेम के लिये कुछ पता नहीं चलता कि कौन राजा है, कौन नौकर है। प्रेम तो जिससे हो जाय, वह उसी को राजा बना लेता है और जिससे न हो जाय, वह न कुछ रह जाता है। लेकिन राजा ने सोचा, यह क्या गड़बड़ बात है। यह बड़े अपमान की बात है। यह अफवाह फैलेगी तो बहुत बुरा होगा। उसने नौकर को बुलाया। वह नौकर सच में बहुत प्यारा था और राजा भी उसे प्रेम करता था। उसने नौकर से कहा कि उचित तो यही था कि मैं तलवार उठाऊं और तेरे सिर को तेरे शरीर से अलग कर दूं, लेकिन मैंने भी तुझे प्रेम किया है और तू अद्‌भुत व्यक्ति था, इसलिये तुझे मैं एक मौका दूंगा। तलवार उठा और मेरे सामने आ। हम दोनों तलवार से लड़ें। जो मर जाय, वह मर जायगा और जो बचेगा वह मालिक हो जायगा। यह बड़ी दया की बात थी। राजा के लिये यह अनिवार्य नहीं था कि वह नौकर से लड़े और उसे भी एक मौका दे। उसे वह वैसे ही मार डाल सकता था। नौकर ने कहा कि आप कहते तो ठीक हैं, लेकिन बात वहीं की वहीं रही, क्योंकि मैंने तो कभी तलवार उठायी भी नहीं, तो मैं तलवार उठाकर आपसे

कितनी देर जीत पाऊंगा। और आप तो बड़े कुशल हैं, आपका तो दूर दूर तक नाम है। आप जैसा तलवार चलानेवाला नहीं है। तो आप कहते तो हैं कि मुझ पर दया कर रहे हैं, लेकिन यह दया न हुई क्योंकि मैं समझता हूं इसका मतलब कि इसका अन्त क्या होनेवाला है। मैंने तो कभी तलवार पकड़ी भी नहीं और मुझे पता भी नहीं कि तलवार कैसे पकड़ी जाती है। मैं आपके मुकाबले कैसे जीतूंगा? फिर भी राजा ने कहा था, आज्ञा थी इसलिये उसे तलवार उठानी पड़ी। सारे दरबार के लोग खड़े होकर देखते थे। राजा ने अपने जीवन में बहुत से द्वन्द्व जीते थे। दूर दूर तक उसका नाम था। उस जैसा तलवार चलानेवाला कुशल व्यक्ति नहीं था लेकिन लोग भी हैरान हुये, राजा खुद भी हैरान हुआ। उस नौकर के सामने तलवार चलाना मुश्किल हो गया। वह तलवार चलाना जानता भी नहीं था, लेकिन राजा हर घड़ी पीछे हटने लगा। नौकर ऐसे वार कर रहा था कि राजा घबरा गया। वह वार बिलकुल अकुशल था। वह आक्रमण बिलकुल ही गड़बड़ था, पद्धति के बाहर था। लेकिन नौकर के सामने एक ही विकल्प था, मरना या मारना। उसकी सारी शक्ति इकट्ठी हो गयी थी। उसके सारे सोये प्राण जाग गये थे। उसके सामने दूसरा कोई सवाल नहीं था। वह मरेगा, यह तय था। इसलिये वह मरने के लिये कुछ भी कर रहा था। और अन्ततः राजा को चिल्लाना पड़ा कि ठहरो! राजा ने कहा, मैं हैरान हूं, मैंने तो ऐसा आदमी कभी नहीं देखा। मैं बहुत युद्ध लड़ा हूं, यह क्या हुआ! एक साधारण सा नौकर इतनी शक्ति को उपलब्ध हो गया! उसके बूढ़े वजीर ने कहा कि यह मैं पहले से सोच रहा था कि आज आप मुसीबत में पड़ जायेंगे, क्योंकि आप सिर्फ कुशल हैं, लेकिन आपके सामने मृत्यु का सवाल नहीं है। वह व्यक्ति कुशल नहीं है, लेकिन उसके सामने मृत्यु का सवाल है। आपकी पूरी शक्तियां नहीं जाग सकतीं, उसकी पूरी शक्तियां जाग गयी हैं। उससे जीतना असम्भव है।

सब सहारे छोड़ दो

जब भी मनुष्य के सामने उसके सारे सहारे समाप्त हो जाते हैं तभी उसके भीतर की शक्तियां जागती हैं। जबतक हम सहारे को पकड़ते हैं तबतक हम अपने हाथ से अपने शत्रु हैं, तबतक हम अपने भीतर सोई हुई शक्तियों को जगाने का मौका नहीं देते। विश्वास आत्मघात है, क्योंकि विश्वास आपके विवेक को, आपके विचार को जागने नहीं देता है, जागने की कोई जरूरत नहीं आती है। लेकिन अगर आप सारे 'विलीव्हज' को, सारे विश्वास को हटा दें तो आप विवश हो जायेंगे विचार करने को। प्रतिक्षण विवश हो जायेंगे विचार करने

को। एक छोटी से छोटी चीज भी आपके मन के भीतर विचार करने का मौका बन जायगी। आपको सोचना ही पड़ेगा। क्योंकि बिना सोचे जीना असम्भव हो जायगा। विश्वास को हटा दें, तो आपके भीतर सोई हुई विचार की शक्ति का अद्‌भुत जागरण शुरू होगा। जो सब विश्वासों को हटा देता है वही विवेक को उपलब्ध हुआ है। बुद्ध ने, महावीर ने, क्राइस्ट ने सब तरह के विश्वास को हटाकर ही विवेक को उपलब्ध किया है। और हम नहीं हो सकते उपलब्ध। क्योंकि हम विश्वास को पकड़ते हैं। विश्वास को पकड़ते हैं, आलस्य के कारण। भय के कारण विश्वास को पकड़ते हैं कि बिना सहारे के क्या होगा। बिना सहारे के तो हम गिर जायेंगे। मैं आपसे कहता हूं कि बिना सहारे के गिर जाना भी किसी के सहारे से खड़े रहने से बेहतर है, क्योंकि जब आप गिरते हैं तब आप कुछ तो करते हैं, गिरते हैं। कुछ तो आपसे होता है; गिरना ही होता है लेकिन फिर भी वह कृत्य आपका है। जब आप गिरते हैं, तो उठने के लिए कोशिश करेंगे ही। क्योंकि कौन गिरा रहना चाहता है। लेकिन जब आप सहारे से सम्हले रहते हैं और खड़े रहते हैं, तब वह कृत्य आपका नहीं है। खड़े होना ही आपका नहीं है, किसी के सहारे का है। वह झूठा है, वह खड़ा होना बिल्कुल मिथ्या है। अपना गिरना भी सच है, दूसरों के कन्धे पर हाथ रखकर खड़े रहना भी झूठ है। सारे सहारे छोड़ दें, हटा दें सारे विश्वासों को और मौका दें कि आपके विचार की शक्ति सक्रिय हो जाये, काम में आ जाये। मौका दें कि आपके भीतर विचार पैदा हो जाये। कभी आप अगर तैरना सीखना चाहते हों तो बेसहारे पानी में गिर जाना काफी है और जो भी इस सम्बन्ध में जानते हैं और किसी को तैरना सिखाते हैं वह एक ही काम करते हैं कि आपको धक्का देते हैं। हर आदमी के भीतर अपने को बचाने की तीव्र आकांक्षा है, वही तैरना बन जाती है। लेकिन कोई अगर यह सोचता हो कि बिना तैरे मैं पानी में कभी नहीं उतरूंगा, तो फिर वह समझ ले कि वह तैरना कभी सीख नहीं सकता है। एक दिन तो बिना तैरना जाने हुए पानी में उतरना ही होगा। एक दिन तो अज्ञात, अनजाने पानी में कूदना ही होगा। उससे ही तैरने की क्षमता जगेगी। लेकिन हमारा मन निरन्तर सहारे खोजता है, सहारे खोजने वाला मन गुलामी खोजता है। जिसका भी हम सहारा खोजते हैं, उसके ही हम गुलाम हो जाते हैं—फिर चाहे वह गुरु हो, चाहे वह भगवान हो, वह चाहे अवतार हो, चाहे तीर्थंकर हो, चाहे कोई भी हो—जिसका भी हम सहारा खोजते हैं उसके ही हम गुलाम हो जाते हैं। सब सहारे छोड़ दें तो आपके भीतर वह मौजूद

है, जो जागेगा। आपके भीतर वह शक्ति छिपी है, जो उठेगी और बड़ी तीव्रता से उठेगी।

साहसिक निर्णय

मन के तल पर यदि स्वतन्त्र होने का आप निर्णय ले लें, तो इस दुनिया में आपको आत्मा को जानने से कोई वंचित नहीं रख सकता है। लेकिन वह निर्णय लेना होगा कि मैं मन के तल पर स्वतन्त्र होने का निर्णय करता हूं। मैं निर्णय करता हूं कि मैं अपने विचार के तल पर किसी की गुलामी को स्वीकार नहीं करूंगा। मैं निर्णय करता हूं कि मैं किसी का अनुयायी नहीं बनूंगा, कोई शास्त्र और कोई सिद्धान्त मेरे मन पर बोझ न बन सकेंगे। मैं केवल उसी सत्य को सत्य जानूंगा जिसे मैं पा लूंगा। अन्यथा मैं जानूंगा, वह किसी के लिए सत्य हो, लेकिन मेरे लिए सत्य नहीं है। इतना साहस न हो तो जीवन को नहीं पाया जा सकता है। क्योंकि इतना साहस न हो तो मन स्वतन्त्र ही नहीं होगा। और यह भी आपके निवेदन कर दूं कि बहुत दिन की गुलामी प्रीतिकर हो जाती है, बहुत दिन की जंजीरें सुखद लगने लगती हैं, उनको तोड़ने से घबराहट होने लगती है, तोड़ने में डर होता है। गुलामी को मिटाने में जो सबसे बड़ी बाधा है वह गुलाम खुद गुलामी को प्रेम करने लगता है और कोई किसी दूसरे को स्वतन्त्र थोड़े ही कर सकता है। गुलाम खुद गुलामी को प्रेम करने लगता है। यहां तक कि वह अपनी गुलामी को बचाने के लिए जान दे सकता है। गुलामों ने जानें दी हैं गुलामी को बचाने के लिए। सारी दुनिया में हजारों बरस से यह होता रहा है।

वेस्टील का किला फ्रान्स के क्रान्तिकारियों ने तोड़ा था। उस किले में वहां के कैदी बन्द थे। सैकड़ों बरसों से वह फ्रान्स का सबसे पुराना किला था। और सबसे जघन्य अपराधियों को वहां बन्द कर देते थे। जिनको आजन्म कारा-वास होता था उनको बन्द कर दिया जाता था। कोई तीस साल, कोई चालीस साल, कोई पचास साल से वहां बन्द था। फ्रेन्च रिवोलूशन में क्रान्तिकारियों ने सोचा कि जायें उसे तोड़ दें और वे सभी कैदी मुक्त होकर प्रसन्न होंगे।वहां जाकर दीवाल तोड़ दें और कोठरियों से कैदियों को बाहर निकाल लें। उनके हाथों में जंजीरें, पैरों में जंजीरें बरसों से थीं–कोई चालीस साल से, कोई तीस साल से, कोई पचास साल से। कोई बीस साल की उम्र में कैद हुआ था और साठ साल उसने जंजीरों में बिताये। उन्होंने जंजीर तोड़ दीं और उन कैदियों से कहा कि जाओ, तुम प्रसन्न हो और मुक्त हो। लेकिन वे कैदी ठगे से खड़े रह गये और उन्होंने कहा कि नहीं हम तो यहीं ठीक हैं और हमें तो बाहर बहुत

बुरा मालूम होगा। अब साठ साल हमने अन्धेरी कोठरियों में बिताये, ये अन्धेरी कोठरियां भी हमें प्रीतिकर हो गयी हैं, ये हमारे घर हो गयीं हैं। बाहर तो बड़ा भय मालूम होता है। वहां क्या करेंगे? कौन खाने को देगा, कौन पीने को देगा? वहां मित्र-परिजन तो कोई नहीं हैं। लेकिन क्रान्तिकारी जिद्दी थे। उन्होंने जबरदस्ती उन्हें बाहर निकाला। जबरदस्ती एक दिन वे भीतर भी लाये गये थे, जबरदस्ती एक दिन उनको बाहर भी निकाल दिया। जब आये थे तब भी वे रो रहे थे कि हम भीतर नहीं जाना चाहते हैं, जब निकाले जा रहे थे तब भी वे परेशान थे कि हम बाहर नहीं जाना चाहते हैं। सांझ होते होते आधे कैदी वापस लौट आये। यह इतिहास की अद्‌भुत घटना है। और उन्होंने कहा कि क्षमा करें, हम यहीं ठीक हैं, हमें बाहर अच्छा नहीं मालूम होता है और नहीं अच्छा मालूम होगा। उन कैदियों ने कहा कि बिना जंजीरों के हाथ ऐसे लगते हैं जैसे नंगे हों। बिना जंजीरों के ऐसा लगता है जैसे वजन खो गया हो शरीर का। उनके बिना अच्छा नहीं लगता है।

शरीर के तल पर जंजीरें हैं, मन के तल पर भी जंजीरें हैं–उनके बिना भी अच्छा नहीं लगता है। अगर आपसे मैं कहूं कि थोड़ी देर कोई हिन्दू होना बन्द कर दे, तो भीतर बड़ी बेचैनी शुरू हो जायगी। जैन होना बन्द कर दें, मुसलमान होना बन्द कर दें, आदमी होना शुरू करें। हिन्दू, जैन, मुसलमान, ईसाई सब गुलामियां हैं––ये होना बन्द करें, तो भीतर बड़ी बेचैनी होगी और लगेगा कि बिना हिन्दू हुए मैं हो ही कैसे सकता हूं, बिना मुसलमान हुए मैं हो ही कैसे सकता हूं, बिना किसी सम्प्रदाय से बंधे मेरा होना कैसे होगा, मैं तो सब खाली–खाली हो जाऊंगा, बड़ी मुश्किल में पड़ जाऊंगा!

किसी के पिछलग्गू मत बनो

भीतर जंजीरें हजारों साल की हैं, वे मन को जकड़े हुए हैं। थोड़ा सोचें, थोड़ा विचार करें, थोड़ा साहस जुटायें, थोड़ा संकल्प करें। एक संकल्प जरूरी है–धर्म की, सत्य की खोज। अगर वही किसी दिन पाना है जिसे पाकर महावीर जिन हो जाते हैं, गौतम सिद्धार्थ बुद्ध हो जाते हैं, जीसस क्राइस्ट हो जाते हैं–– तो विश्वास की सारी परतंत्रताओं को तोड़ना होगा। बाद के ईसाई क्या हैं? बाद के ईसाई ईसा नहीं हो सकते, क्योंकि ईसा होने के लिए सब तरह से स्वतन्त्र व्यक्तित्व चाहिए और ये तो ईसा के ही गुलाम हैं। महावीर के पीछे चलने वाला जैन कभी महावीर नहीं हो सकता है, क्योंकि महावीर होने के लिए सब भांति स्वतन्त्र आत्मा चाहिए और यह तो महावीर का ही गुलाम है। बुद्ध के पीछे

चलने वाला कोई कभी बुद्ध नहीं हो सकता है। असल में पीछे चलने वाला कभी भी कुछ नहीं हो सकता है, क्योंकि पीछे चलने वालों ने एक बुनियादी उपद्रव कर लिया है, कि वह किसी के पीछे गया। उसी क्षण उसने अपनी आत्मा को खोना शुरू कर दिया, उसने स्वतन्त्रता बेच दी, वह गुलामी के लिए राजी हो गया।

तो आज की सुबह मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि अविचार, विश्वास, श्रद्धा, आस्थाएं, बिलीव्ज मनुष्य को उसके मन को स्वतन्त्र नहीं होने देतीं, परतन्त्र बनाये रखती हैं। और परतन्त्र जो मन है वह शरीर को ही जान सकता है, उसके ऊपर कुछ भी नहीं जान सकता है। यदि मन स्वतन्त्र हो जाये तो वह उसको जान सकता है जो हमारे भीतर परम स्वतन्त्रता का मूल स्रोत है—जिसे हम आत्मा कहें, परमात्मा कहें, कुछ और कहें। स्वतन्त्र मन ही स्वतन्त्रता को जानने में समर्थ हो सकता है, स्वतन्त्र ही आत्मा की तरफ आंखें उठा सकता है। परतन्त्र मन परतन्त्र शरीर की तरफ ही देखने में समर्थ है। मैंने कहा, शरीर अनिवार्य रूप से परतन्त्र है, आत्मा अनिवार्य रूप से स्वतन्त्र है। मन स्वतन्त्र भी हो सकता है, परतन्त्र भी हो सकता है। यह आपके हाथ में है। आपके हाथ में है कि मन कैसा हो—स्वतन्त्र हो या परतन्त्र। अगर मन को परतन्त्र ही रखना हो तो आप शरीर के ऊपर कुछ भी नहीं जान सकते हैं और शरीर की मृत्यु होगी और मृत्यु के ऊपर आप कुछ भी नहीं जान सकेंगे। लेकिन यदि मन स्वतन्त्र हो सके, तो आत्मा जानी जा सकती है। और आत्मा अमृत है, उसका न कोई जन्म है और न कोई मृत्यु है। लेकिन यह मेरे कहने से नहीं हो सकता है। यह मैं कहूँ कि आत्मा का न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है और आप दोहरायें तो खतरनाक होगा। इसमें कोई अर्थ नहीं रह गया। यह तो विश्वास हो गया। मैं तो आपसे कह रहा हूं कि मानना ही मत कि आत्मा है, अभी यह मत मानना। अभी तो इतना ही जानना जरूरी है कि मेरा मन परतन्त्र है और इस आकांक्षा से स्वयं को भरना जरूरी है कि मैं इसे स्वतन्त्र करूंगा।

अविचार से विचार पर

जिस दिन मन स्वतन्त्र होगा उसी दिन भीतर की आत्मा की झलक आनी शुरू हो जायगी। जिस दिन मन पूरा स्वतन्त्र होगा उस दिन आत्मा में प्रतिष्ठा हो जाती है— वही जीवन है, वही अमृत है, वही सारा केन्द्र है। सारे जगत का, सारी सत्ता का, सारे अस्तित्व का वहीं छिपा है अर्थ। लेकिन उस अर्थ को वे ही जान सकते

हैं जो स्वतन्त्र होने को तैयार हैं। जीवन-सत्य को जानने के लिए स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाना अनिवार्य है। उसकी तैयारी है तो जीवन-सत्य को जाना जा सकता है। नहीं तैयारी है, तो मृत्यु के अतिरिक्त कुछ भी जानने का उपाय नहीं है।

ये मैंने अविचार के सम्बन्ध में, विश्वास के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं। कल कैसे यह मेरा चित्त, हमारा चित्त स्वतन्त्र है, उस दिशा में बात करूंगा। कल विचार के सम्बन्ध में बात करूंगा और परसों निर्विचार के सम्बन्ध में। क्योंकि विचार एक सीढ़ी है, उस पर रुक नहीं जाना है, उससे पार हो जाना है। जैसे किसी छप्पर पर हम चढ़ते हैं तो हम सीढ़ी पर चढ़ जाते हैं, लेकिन अगर हम सीढ़ी पर रुक जायं तो छप्पर पर नहीं पहुंच सकते। सीढ़ी पर जाते भी हैं और सीढ़ी को छोड़ भी देते हैं। आत्मा तक पहुंचने के लिए अविचार से विचार पर जाना होगा। विचार को छोड़ देना होगा, निर्विचार को उपलब्ध करना होगा।

परसों सुबह मैं निर्विचार के बाबत बात करूंगा। इस सम्बन्ध में जो भी प्रश्न हैं और खूब प्रश्न होने चाहिए; क्योंकि मैं कहता हूं कि सन्देह करें। मेरी बात पर अगर सन्देह न करें, तो फिर प्रश्न ही न उठेगा। खूब सन्देह करें जितना कर सकते हैं। अंतिम रूप से सन्देह करें। जितना सन्देह करेंगे उतना आपके भीतर विचार का जागरण होगा। मैंने जो कहा है उसे मान नहीं लें, उसे स्वीकार नहीं करें और प्रश्न उठायें, कुछ सोचें और विचार करें। मैं यहां कोई आपको उपदेश देने को नहीं हूं। उपदेश से ज्यादा खतरनाक और कोई बात नहीं हो सकती। मैं यहां कोई उपदेश देने को नहीं हूं, मैं कोई शिक्षक नहीं हूं, मैं कोई टीचर नहीं हूं – मैं तो आपके भीतर कुछ जगाने को हूं, इसलिए आपको कुछ धक्का दे सकता हूं, 'शाक्स' दे सकता हूं––उपदेश नहीं। धक्के से शायद आपकी नींद टूटे और कोई जगे। शायद आपके भीतर कुछ परेशानी हो, कुछ बेचैनी हो और कुछ जगे।

सुबह सुबह उठकर मैं बैठा तो एक मित्र ने कहा, मैं रात सोचता रहा मृत्यु के बाबत, तो फिर मैं रात भर सो ही न सका और मैं इतना बेचैन और परेशान हो गया कि मुझे लगा कि यह बात ठीक है कि यदि मृत्यु है तो जो मैं कर रहा हूँ वह व्यर्थ है। तो फिर क्या मैं निष्क्रिय हो जाऊं, तो क्या मैं सब करना छोड़ दूं? मैं खुश हुआ कि उनकी रात की नींद विलीन हो गयी। आपकी पूरी जिन्दगी से नींद चली जाय तो यह परमात्मा के लिए सबसे बड़ा धन्यवाद होगा। आपमें इतनी चिन्ता आ जाये, आपमें इतना सन्देह आ जाये, आपमें इतना विचार जग जाय कि आप सो न पायें, तो आपके जीवन में कुछ हो सकता है। लेकिन आप तो इतने निश्चिंत सो रहे हैं कि आपके जीवन में बहुत कम सम्भावना है कि कुछ होगा।

एक छोटी सी कहानी है, उसे सुनाकर मैं चर्चा पूरी करूंगा :

संत भीखन एक गांव में गये थे। वे उस गांव में संध्या को बोलते थे। जब बोल रहे थे तो सामने एक आदमी सोया हुआ था। शायद आसोजी उसका नाम था। तो उन्होंने बीच में उससे पूछा : आसोजी, क्या सोते हो ? उसने जल्दी से आंख खोली और कहा, नहीं। नहीं, कहां सोता हूं ? कोई सोनेवाला आदमी यह मानने को कभी राजी नहीं होता है कि वह सोता है। सो यद्यपि वह सोता था लेकिन जल्दी से उसने आंख खोली और उसने कहा, क्या है ? नहीं, मैं नहीं सोता हूं। फिर थोड़ी बात चली, लेकिन सोनेवाला कितनी देर जागेगा। वह फिर सो गया। तो भीखन ने फिर कहा कि आसोजी सोते हो ? उसने कहा, नहीं। फिर उसने आंख खोल ली। अबकी बार उसने 'नहीं' और जोर से कहा, क्योंकि वह धीमे कहेगा तो संदेह की बात होगी। अब कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं सोता हूं, आप क्या बार बार वही सोने की बात कहते हैं। और गांव के लोग भी सुनते थे और अगर यह पता चले कि आसोजी सोता है, तो बदनामी होगी। लेकिन इससे क्या होता था। थोड़ी देर फिर बात चली, फिर नींद आ गयी उसे। भीखन ने जो पूछा बहुत अद्‌भुत पूछा। भीखन ने पूछा, आसोजी जीते हो ? उसने कहा कि नहीं, क्योंकि उसने नींद में सुना कि शायद वे फिर पूछते हैं कि आसोजी सोते हो ? उसने कहा बिल्कुल नहीं। भीखन ने कहा, अब तुमने ठीक उत्तर दिया।

धन्य हैं वे जो असंतुष्ट हैं

जो आदमी सोता है, वह जीता भी नहीं। वह चाहे कितना ही कहे, नहीं, नहीं। उसके नहीं का कोई भी मूल्य नहीं है। और फिर किसी से कहने का कोई सवाल ही नहीं है। यह तो अपने भीतर देखने और विचारने का सवाल है कि क्या मैं जिन्दगी में सो रहा हूं, क्या मैं सोये चले जा रहा हूं ? न कोई प्रश्न पैदा हो रहे हैं, न कोई चिन्ता पैदा हो रही है, न जीवन के सम्बन्ध में कोई बेचैनी पैदा हो रही है, न कोई असन्तोष पैदा हो रहा है, न कोई अशान्ति पैदा हो रही है। लोगों ने आपसे कहा होगा कि धार्मिक आदमी शान्त होता है, सन्तुष्ट होता है। मैं आपसे नहीं कहता हूं। धार्मिक आदमी बहुत असन्तुष्ट होता है, बहुत अशान्त होता है। यह जीवन एकदम उसे असन्तुष्ट कर देता है। जीवन में ऐसे कभी शान्ति नहीं मिलती। यह सारा जीवन उसे व्यर्थ मालूम देता है। उसके भीतर गहरी पीड़ा पैदा होती है, गहरे संताप पैदा होते हैं, उसके सारे प्राण कांपने लगते हैं, उसके सारे प्राण चिन्ता से भर जाते हैं। उसी चिन्ता से, उसी चिन्तन से, उसी विचार से उसके भीतर शुरुआत होती है किसी नयी दिशा की। नयी खोज में जाता है। धन्य हैं वे जो असन्तुष्ट हैं। जो संतुष्ट हैं वे तो करीब करीब मर ही चुके हैं। उनके

भीतर अब कुछ होने की गुंजाइश नहीं रही है। तो मैं आपको कोई उपदेश नहीं देना चाहता, असन्तोष देना चाहता हूं। और आप में से बहुत से लोग इस ख्याल में आये होंगे कि यहां शान्ति उपलब्ध होती है। मैं आपको अशान्ति देना चाहता हूं। क्योंकि जो ठीक से अशान्त नहीं होता, वह कभी शान्ति को पा ही नहीं सकेगा और जो ठीक से असन्तुष्ट नहीं होता, सन्तोष उसके भाग्य में नहीं है।

परमात्मा करे आप असन्तुष्ट हो जायें, आपकी नींद टूट जाये, आपको सब व्यर्थ मालूम होने लगे। आप जो कर रहे हैं वह ठीक न मालूम पड़े, आप जहां चल रहे हैं वह रास्ता रास्ता न मालूम पड़े, आपके जो मित्र हैं वे मित्र न मालूम पड़ें, आपके जो सगे-साथी हैं वे सगे-साथी न मालूम पड़ें, आपके जीवन में जो सहारे हैं वे सब टूट जायें, आप बिल्कुल बेसहारा, असुरक्षित खड़े हो जायें, तो आपके भीतर विचार का जन्म हो सकता है। इस सम्बन्ध में और जो प्रश्न होंगे, वे हम रात में विचार करेंगे।

भय से भयानक और कोई बीमारी नहीं है। भय तो विद्रोही की समस्त क्षमता को ही नष्ट कर देता है। भय परिवर्तन को असंभव ही बना देता है। भय इसलिये ज्ञात से बँधा है और अज्ञात की सब यात्रा बंद हो जाती है; जब कि जीवन में जो भी जानने और पाने योग्य है वह सब अज्ञात है।

हम इतने खंड में, इतनी प्रवंचना में,
इतने टुकड़ों में जीते हैं
कि हमें पता भी नहीं पड़ता
कि अखंड जीवन क्या है?
जो जीवन को नहीं साधेगा,
वह जीवन को कैसे उपलब्ध होगा?

जीवन-साधना : क्या और कैसे?

संकलन : श्री भीकमचंद

लाखों आंखों में मुझे झांकने का मौका मिला। इसे दुर्भाग्य कहूं कि दुख कहूं कि कोई ऐसी आंख दिखाई नहीं पड़ती, जो शांत हो। कोई ऐसी आंख दिखाई नहीं पड़ती, जिसमें जीवन की गहराई और सत्य प्रकट होता हो। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता, जिसका जीवन संगीत और आनंद से भरा हुआ हो। इससे बड़ा और कोई दुर्भाग्य नहीं हो सकता है। इससे बड़ी कोई दुर्घटना नहीं हो सकती है कि मनुष्य के जीवन के भीतर कोई संगीत न रह जाय, कोई शांति न रह जाय, कोई आनंद न रह जाय। हम जियें और केवल मृत्यु की प्रतीक्षा करें।

हम केवल मरने को जियें, हम केवल समाप्त होने को बने रहें, और हमारी सारी चेष्टाओं का, और सारे प्रयासों का अंत केवल मृत्यु में हो जाय!

हम जीवन से वंचित रह जायें, इससे बड़ी और कोई दुर्घटना नहीं हो सकती है। और इस दुर्घटना के पीछे कोई और दूसरे व्यक्ति का हाथ नहीं है। इस दुर्घटना के पीछे हमारा अपना हाथ है। हम उन लोगों की तरह हैं, जो जिन डालों पर बैठते हैं उन्हीं पर कुल्हाड़ी चलाते हैं। और हम उन लोगों की तरह हैं जो अपने ही हाथों से अपने सारे भवन को भूमिसात कर देते हैं। ये स्थिति इसलिए पैदा होती है कि हममें से शायद किसी को भी ये बोध पैदा नहीं होता कि जीवन को निर्मित करना होता है, तपस्या और साधना से, जीवन बना बनाया (Ready Made) उपलब्ध नहीं होता।

हम और चीजें सीखते हैं, जीवन को जीना नहीं सीखते। और सारी बातों की शिक्षा है, जीवन की कोई शिक्षा नहीं है। हम सारे लोग बहुत कुछ सीखते हैं, लेकिन जो सीखने योग्य है उससे वंचित रह जाते हैं—वही हमें स्मरण नहीं आता है। हम इतने खंड में, इतनी प्रवंचना में, इतने टुकड़ों में जीते हैं कि हमें पता भी नहीं पड़ता कि अखंड जीवन क्या है और उसके जीने का क्या राज है? कोई संगीत को साधता है, कोई यश को साधता है, कोई धन को साधता है, कोई संपत्ति की तलाश करता है, कोई और कलायें सीखता है। ऐसे लोग मुझे खोजे नहीं मिलते जो जीवन को सीखते हों और जीवन को साधते हों। और जो व्यक्ति जीवन को नहीं साधेगा, वह जीवन को कैसे उपलब्ध होगा? हम और सब कुछ साधते हैं और यह भूल ही जाते हैं कि केन्द्रीय शक्ति जो साधने को है, वह जीवन है।

नानक एक गांव में मेहमान थे। किसी व्यक्ति ने नानक को कहा— मेरे पास बहुत संपत्ति है। मैं चाहता हूं कि यह संपत्ति दान कर दूं। चाहता हूं कि यह धर्म में किसी काम आ जाय। मुझे आज्ञा दें तो आपके काम में सब लगा दूं।

नानक ने कहा— सच ही मैं आज्ञा दूं? अब तक जितने संपत्तिशाली मुझे मिले हैं, उन सबको एक ही आज्ञा मैंने दी है, वही तुम्हें दूं। लेकिन स्मरण रहे अब तक कोई उस आज्ञा को पूरा नहीं कर पाया है।

उस व्यक्ति ने कहा— मैं अपना सब कुछ लगा दूंगा। ऐसी कौन सी आज्ञा होगी जिसमें मैं अपना सब कुछ लगाऊं और पूरी न हो सके? और ऐसा क्या है, जो न पाया जा सके? मेरे पास बहुत संपत्ति है, मैं सब लगाने को राजी हूं।

नानक ने कहा — देखें, प्रयोग करें, संभव है बात बन जाय। और उन्होंने एक कपड़ा सीने की सुई उस आदमी को दी और कहा इसे तुम संभाल के रखो और जब हम दोनो मर जायं तो इसे वापस लौटा देना। संभाल लो कहीं खो न जाय।

उस आदमी ने गौर से उनकी आंखों में देखा। मुझे भी कहा होता तो मैं

भी देखता। आपको कहा होता तो आप भी देखते। उसने सोचा, शायद नानक पागल है या मजाक करता है। मरने के बाद यह कैसे संभव होगा कि सुई वापस कर दी जाय? लेकिन वहां भीड़ थी, बहुत से लोग थे। उसने नानक को वहां कुछ कहना ठीक न समझा। वह घर गया। उसने सोचा, अपने मित्रों से पूछा। जिन्हें वह विचारक समझता था उनके पास पूछने गया कि क्या कोई रास्ता हो सकता है? क्या मैं मरने के बाद इस छोटी सी सुई को ले जा सकता हूं? मैं सारी संपत्ति लगाने को तैयार हूं कि मरने के साथ इस छोटी सुई को ले जाऊं? उन्होंने कहा– पागल हो! आज तक मृत्यु के पार कुछ भी नहीं गया। वह अलंघ्य खाई है, उस खाई के पार कुछ भी ले जाना संभव नहीं है। फिर तुम्हारी कितनी भी संपत्ति हो और कितनी ही शक्ति हो और तुम्हारी कितनी ही समृद्धि हो, वह कोई भी समर्थ न होगी कि ये सुई उस पार चली जाय। यह सुई वापस कर दो। अन्यथा यह ऋण मृत्यु के बाद न चुकाया जा सकेगा।

परमात्मा को पाने के लिये समय की जरूरत नहीं, जरूरत है संकल्प की। परमात्मा को पाने के लिये जरूरत नहीं है स्थान की, जरूरत है आकांक्षा की।

वह आदमी सुबह ही सुबह जब कि अंधेरा था, नानक के पास गया और कहा– ये सुई अपनी ले लो वापस। कहीं ऐसा न हो कि हम मर जायं और ये उधारी, ये ऋण मुझ पर रह जाय। मरने के बाद मैं इसे न लौटा सकूंगा।

नानक ने कहा––तुम्हारी संपत्ति का क्या हुआ और तुम्हारी सारी शक्ति का क्या हुआ? तुम्हारे उस द्रव्य का क्या हुआ, तुम्हारे इतने अहंकार का क्या हुआ? इतना छोटा सा काम, इतनी छोटी सी सुई, जिससे छोटी और कोई चीज नहीं हो सकती है, उसे भी तुम मृत्यु के पास नहीं ले जा सकते हो!

उस आदमी ने कहा––माफ करें! क्षमा करें! इस सुई ने मुझे बहुत दरिद्र बना दिया है। मुझे पहली दफा पता चला कि हमारी कोई शक्ति नहीं, हमारी कोई संपत्ति नहीं, हमारी कोई सामर्थ्य नहीं। एक सुई को भी हम मृत्यु के पार न ले जा सकेंगे।

तब नानक ने कहा––और है कुछ तुम्हारे पास जिसे पार ले जा सकोगे?

उसने कहा––इस सुई ने सब दिखा दिया। कुछ भी मेरे पास नहीं है।

नानक ने उस व्यक्ति से कहा––तब तुम जो अब तक कमाते रहे हो, वो संपत्ति नहीं हो सकती है। जो मृत्यु में साथ न आये, वो संपत्ति कैसे हो सकती है? जो विपत्ति में काम न आये, वो संपत्ति कैसे हो सकती है? और विपत्ति क्या है? इस जगत में सिवाय मृत्यु के और कोई विपत्ति नहीं। बाकी सब टल जाता है, जो नहीं टल जाती वह केवल मृत्यु है। बाकी सबसे हम जूझ लेते हैं, जिससे नहीं जूझ पाते, वह मृत्यु है। और जो मत्यु में काम आ जाय वही संपत्ति है।

हम जो कमाते हैं, वह मृत्यु में काम नहीं आयेगा। इसलिए नासमझ हैं वे जो उसे संपत्ति समझते हैं। पर कुछ ऐसा भी कमाना संभव है जो मृत्यु में काम आ जाता है। और ऐसी भी संपदा है जो मृत्यु के पीछे पार हो जाती है, और ऐसी भी शक्ति है जिसे मृत्यु की लपटें नहीं जला पाती हैं। धर्म का संबंध उसी शक्ति से, उसी संपत्ति से है और वह संपत्ति उस व्यक्ति को उपलब्ध होती है जो जीवन को साधता है। जो यश को साधता है, जो धन को साधता है उसे वह उपलब्ध नहीं होती।

मृत्यु के पार होने की सामर्थ्य उसे उपलब्ध होती है, जो जीवन को साधता है। क्योंकि जीवन की सिद्धि पर अमृत उपलब्ध होता है। जो जीवन को साधेगा उसे अमृत उपलब्ध होगा। क्योंकि जीवन की अंतिम परिणति अमृत है और जो जीवन को नहीं साधेगा उसे मृत्यु ही केवल उपलब्ध हो सकती है। जीवन को न साधने का परिणाम और होगा भी क्या? जीवन को न साधने का अर्थ अगर ठीक से समझें तो मृत्यु को साधना है। जो धर्म को नहीं साध रहा है, वह केवल मृत्यु को साध रहा है। यह स्मरण पूर्वक दृष्टि में बैठ जाना चाहिए, यह बात बहुत स्पष्ट दीख जानी चाहिए कि जो धर्म को नहीं साध रहा है, वह मृत्यु को साध रहा है। वह साधे या न साधे मृत्यु के सिवाय उसके हाथ में अन्य कुछ भी नहीं आ सकता है।

जीवन के सामने एक ही प्रश्न है और वह मृत्यु है। और कोई प्रश्न नहीं है। जीवन के सामने एक ही ज्वलंत प्रश्न है–मृत्यु! जिन प्रश्नों को हम प्रश्न मानकर चलते हैं और जिनको हम जीवन में सुलझाने की चेष्टा करते हैं वे वास्तविक प्रश्न ही नहीं हैं। वे ऐसी समस्यायें नहीं हैं जिनका समाधान न हो। समाधान हम खोज लेते हैं। केवल एक प्रश्न ऐसा है जिसका कोई समाधान नहीं दिखता है, उस समाधान के लिए जो साहस करता है–वही केवल ठीक अर्थों में मनुष्य है। जो उस चरम समस्या को सुलझाने के लिए, उस चरम समस्या के समाधान के लिए प्रयासरत होता है, वही केवल पुरुषार्थ को उपलब्ध होता है, वही केवल साहस को उपलब्ध होता है, वही केवल अपने मनुष्य होने की घोषणा कर सकता है। शेष दूसरी कोई साधना नहीं है।

जो मृत्यु से घिरे हैं, उनके किये हुए का क्या मूल्य है ? जो मृत्यु से घिरे हुए हैं उनके इकट्ठे किये हुए संग्रह का क्या मूल्य है ? जो मृत्यु से घिरे हुए हैं, उनके इकट्ठे किये विचारों का क्या मूल्य है ? उनके सम्मान और यश का क्या मूल्य है ? मृत्यु उनकी सारी चेष्टाओं को निष्फल कर देगी और वे पायेंगे कि उनके हाथों में कुछ भी नहीं है ।

जैसे रात्रि में सोयें और स्वप्न देखें और सपनों में बहुत कुछ होने की, आकांक्षाओं की तृप्ति देखें और बहुत कामनाओं की पूर्ति देखें और सुबह जागकर पायें कुछ भी हाथ में नहीं है । वैसे ही एक दिन प्रत्येक व्यक्ति को मृत्यु का जागरण सारे स्वप्नों को खंडित कर के जगा देता है ।

तब उसे ज्ञान होता है कि जिन बातों को हमने समझा था कि हमारी मुट्ठी में हैं वे हमारी मुट्ठी में नहीं हैं । और जिन चीजों को समझा था कि हमारी हैं, वे हमारी नहीं हैं । और जिन लोगों का साथ था, जिस संपत्ति में स्वामित्व था, वह कुछ भी हाथ में नहीं है । हम वैसे ही नग्न और नर्क में पड़े हैं ।

मृत्यु जिस दरिद्रता को उघाड़ देगी, विवेकशील उसे मत्यु के पहले ही उघाड़ लेता है । मृत्यु जिस सत्य को अनावृत्त कर देगी, विवेकशील उसे मृत्यु के पहले ही आविष्कृत कर लेता है । मृत्यु जिन सपनों को तोड़ेगी, विवेकशील उन सपनों को पहले ही तोड़ देता है । साधना का और धर्म का इससे ज्यादा अर्थ नहीं है कि उन सपनों को जिसे मृत्यु तोड़े अपने हाथों तोड़ लें और उन संपत्तियों को जिन्हें मृत्यु छीन लेगी हम अपने से खुद जानें कि हमारे पास नहीं हैं । जो इस भांति जाग सकता है, मृत्यु के पहले जो मृत्यु सहन कर सकता है—वही साधक है, वही धर्म में मसगूल है, वही जीवन को साधने की तरफ उत्सुक हुआ है । अभी तो हमें प्रतीत ही होता है कि हम जीते हैं और हम इस भ्रम में होते हैं कि हम जी रहे हैं ।

सारा अतीत स्वप्न है

मैं आपका ये भ्रम तोड़ दूं, इससे बड़ा और कोई साहस मैं आपको नहीं दे सकता । यह भ्रम खंडित हो जाय, यह भ्रम आपके ख्याल से उतर जाय कि हम जिसे जीवन समझ रहे हैं वह जीवन नहीं है, तो यह सबसे बड़ी बात होगी, जो कोई आपके हाथ दे दे । महावीर ने, बुद्ध ने या कृष्ण ने और कुछ भी नहीं किया—लोगों का भ्रम तोड़ा । यह भ्रम कि जिसे हम जीवन समझ रहे हैं, वह जीवन नहीं है । यह भ्रम तोड़ा कि जिसे वे सब कुछ समझ रहे हैं वह कुछ भी नहीं है । और यह भ्रम तोड़ा कि जिसे वे सब कुछ समझ रहे हैं, सपनों से ज्यादा उसकी कोई

सत्ता नहीं है।

स्वयं कभी सोचें, किसी विवेक और विचार के क्षण में कभी पीछे लौट कर देखें, अपने आप विचार करें कि कल जो दिन व्यतीत हो गया है, आज सपनों से ज्यादा मालूम होता है ? क्या आज बहुत निश्चित है, कि वे दिन कभी फिरेंगे ? आज बैठकर पीछे नजर डालें, एक सिंहावलोकन करें, पीछे गर्दन को मोड़ें और देखें कि जो दिन बीत गये हैं उन दिनों में और जो सपनों में बीत गयी हैं घटनायें, उनमें कोई भेद है ?

आज लौट के देखें, अतीत और स्वप्न में कौन सा अंतर है ? जो सच में जाना हो वह, और जो स्वप्न में देखा हो, उसमें कौन सा भेद देखा है ? क्या अतीत की स्मृति स्वप्न में घटित नहीं हो गई है ? क्या सारा अतीत स्वप्न नहीं हो जाता है? क्या हम जो जी लेते हैं वह स्वप्न में परिणत नहीं हो जाता है ? और अगर अतीत स्वप्न में बदल गया हो, तो जिसे हम वर्तमान समझ रहे हैं वह भी कितनी देर सच रहेगा ? वह भी स्वप्न में परिणत हो जायेगा। और जिसे हम भविष्य समझ रहे हैं वह भी कितनी देर सच होगा ? वह भी स्वप्न में परिणत हो जायेगा। सब चूंकि अतीत हो जाता है—वर्तमान भी और भविष्य भी, इसलिए सब स्वप्न हो जाता है।

मृत्यु की घड़ी में जाकर जब कोई पीछे लौटकर देखता है, तो क्या दिखाई पड़ेगा ? कोई सत्ता दिखाई पड़ेगी, कोई सत्य दिखाई पड़ेगा ? नहीं, जीवन एक कथा दिखाई पड़ेगी। पता नहीं जो जिया भी गया या नहीं जिया गया ! क्या हम यह ख्याल करते हैं कि मृत्यु की घड़ी में यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि जिसे हमने जीवन समझा था, वह कभी जिये भी या नहीं ? कौन सा अंतर उसमें पड़ेगा ? हो सकता है सब स्वप्न में देखा गया हो।

टालस्टाय ने मरते वक्त अपनी डायरी में लिखा है कि अब मैं पीछे लौटकर देखता हूं तो मुझे ये शक होता है कि या तो मेरी स्मृति खराब हो गई है या फिर मेरी बुद्धि खराब हो गई है। शक होता है कि पीछे जो जीवन मैंने जिया था, वह सच में जिया भी था या केवल स्वप्न में देखा था।

च्वांगत्से चीन में एक अद्भुत साधु हुआ है। उसने लिखा है कि एक रात मैंने स्वप्न मे देखा कि मैं तितली हो गया। फिर मैं सुबह जागा तो मुझे डर लगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि अब तितली स्वप्न देख रही हो कि वह मनुष्य हो गई है? और उसने लिखा है कि इसके बाद ३० वर्ष तक मैं जिया हूं। लेकिन मुझे ये शक बना ही रहा कि पता नहीं तितली स्वप्न देख रही हो कि मैं मनुष्य हो गई हूं।

प्रेरणा के स्रोत आचार्यश्री रजनीश और अपार जन-समूह

मनष्य स्वप्न देख सकता है कि तितली हो गया है, तो तितली भी स्वप्न देख सकती है कि मनुष्य हो गयी है।

उसकी बात हंसने जैसी लग सकती है। लेकिन सच में बहुत रोने जैसी है। हम जो स्वप्न में देखते हैं उसमें और जो हम चारों तरफ देखते हैं उसमें कोई बहुत बुनियादी अंतर है क्या ?

स्वप्न सत्य नहीं होता

जब हम स्वप्न में होते हैं तब जो भी स्वप्न में दिखाई पड़ता है, बिल्कुल सच मालूम होता है। आज तक किसी को भी स्वप्न में पता नहीं चला कि जो वह देख रहा है, वह स्वप्न है। आपको कभी पता चला है ? आज तक इस पूरी जमीन पर करोड़ों लोगों ने करोड़ों स्वप्न देखे हैं, लेकिन किसी ने भी यह नहीं जाना कि जो देख रहे हैं, वह स्वप्न है। स्वप्न में स्वप्न सत्य होता है। जागने पर पता चलता है कि वह असत्य था। तो जो अभी हम देख रहे हैं सोये हुए, वही हमें

> धन्य हैं वे लोग जो कि असत्य की विजय को छोड़ते हैं और सत्य के साथ पराजय को आलिंगन करते हैं। क्यों कि इस प्रकार हार कर भी वे जीत जाते हैं और मिट कर भी उसे पा लेते हैं—जो अमृत है।

सच मालूम होता है। लेकिन कुछ लोग इस स्वप्न से भी जागे हैं, और उन्होंने कहा है कि यह भी स्वप्न है।

महावीर या बुद्ध ऐसे ही जागे हुए लोगों में थे। मृत्यु में तो जागरण प्रत्येक के भीतर घटित होता है। तब उसे लगता है जो सब उसने जाना था वह कथा हो गई, झूठी बात हो गई। पता नहीं हुआ या नहीं हुआ, और हुआ भी हो तो भी नहीं हुए के बराबर है। जो अंत में जी लेने पर व्यर्थ जैसा लगता हो, उसे जीवन नहीं कहा जा सकता है। जो है, वह सदा है, सदा रहेगा। और जो नहीं है वह एक दिन भी नहीं हो सकता है। तो जो स्वप्न है, वही किसी दिन स्वप्न मालूम हो सकता है, जो सत्य है वह चिरकाल सत्य है, वह कभी भी स्वप्न मालूम नहीं हो सकता।

जब रात में स्वप्न देखते है, तब वह कितना ही सत्य मालूम पड़े वह तब भी स्वप्न है; क्योंकि सोकर जागने पर पता चलेगा कि वह स्वप्न था। उस जागने पर थोड़े ही वह स्वप्न हुआ है। वह तो तब भी स्वप्न ही था जब मैं सोया था और स्वप्न देखता था। जो एक दिन स्वप्न प्रतीत हो, वह हमेशा स्वप्न था। जो किसी भी दिन स्वप्न प्रतीत न हो वही केवल सत्य है। जो किसी भी क्षण स्वप्न प्रतीत न हो, जो हर क्षण सत्य प्रतीत हो, वही सत्य है। जिस जीवन को हम जीते हैं वह जी लेने के बाद स्वप्न हो जाता है। तो इसे जीवन नहीं कहा जा सकता, यह एक सपना है। जो वास्तविक जीवन को साधेगा उसे स्वप्न को छोड़ना होगा, तभी वास्तविक जीवन साधा जा सकता है।

जो जागना चाहता है, उसे नींद छोड़नी होगी और स्वप्न छोड़ने होंगे। हो सकता है कोई बहुत सुखद सपने देख रहा है, और हो सकता है कोई बहुत दुखद सपने देख रहा हो। हो सकता है कोई बहुत सम्मान के सपने देख रहा हो और कोई बहुत अपमान के सपने देख रहा हो। लेकिन सपने सब बराबर हैं और सपने में समृद्धि और दरिद्रता बराबर हैं। क्योंकि सपना सपना है, चाहे दरिद्रता का हो, चाहे समृद्धि का हो। सब सपने बराबर हैं—सम्मान के और अपमान के, गरीबी के और समृद्धि के, यश के और अपयश के—इन सपनों को छोड़े बिना कोई सत्य में नहीं जाग सकता है और इस निद्रा को तोड़े बिना कोई जीवन को उपलब्ध नहीं होता है।

इस निद्रा को तोड़ने के लिए क्या किया जा सकता है? यह नींद कैसे तोड़ी जा सकती है? हम कैसे इस स्वप्न के बाद जाग सकते हैं? प्रभु को, आत्मा को या सत्य को जो जानना चाहता है, उसे केवल एक ही शर्त पूरी करनी होगी। एक ही सौदा पूरा करना होगा। सौदा सस्ता और बड़ा अजीब है। स्वप्न छोड़ने होते हैं! जो स्वप्न है, उसे खोना होता है। जो नहीं है उसे खोना होता है ताकि हम उसे अनुभव कर सकें जो है। स्वप्न के मूल्य पर सत्य मिलता है। और हम इस पर भी अगर राजी न हों, तो फिर किस बात पर राजी होंगे?

लोग समझते हैं, महावीर ने संपत्ति छोड़ी, परिवार छोड़ा, धन छोड़ा, राज्य छोड़ा। मैं नहीं समझता। मैं तो समझता हूं—स्वप्न भर छोड़ा। जो सोचता हो, धन छोड़ा, संपत्ति छोड़ी, यश छोड़ा वह समझ नहीं रहा है। असल में जो संपत्ति है, वह तो छोड़ी नही जा सकती, केवल स्वप्न ही छोड़े और तोड़े जाते हैं। जो छोड़ा वह स्वप्न था, जो पाया वह संपत्ति थी।

जो छोड़ा वह स्वप्न था, जो पाया वह संपत्ति थी और हम देखते हैं कि उन्होंने संपत्ति छोड़ी, हम देखते हैं उन्होंने राज्य छोड़ा। मैं आपको कहूं—जो पाया, वह राज्य था, जो छोड़ा वह स्वप्न था। और हम देखते हैं उन्होंने अधिकार छोड़े और मैं आपको कहूं—जो पाया वह अधिकार था, जो छोड़ा वह अधिकार न था।

क्या छोड़ना क्या पाना ?

अब तक इस जगत में स्वप्न के सिवाय कोई चीज छोड़ी नहीं जा सकी है। सत्य छोड़ा नहीं जा सकता है, स्वप्न छोड़े जा सकते हैं। निद्रा के सिवाय कोई कुछ त्याग नहीं सकता है और वस्तुतः त्यागने को और कुछ है भी नहीं। स्वप्न छोड़ना है और भूमिका तैयार करनी है, ताकि सत्य का आगमन हो सके। सौदा बड़ा सस्ता है और वे लोग होशियार हैं जो सौदे को कर लेते हैं और वे नासमझ हैं जो सौदे को नहीं कर पाते। वे समझदार हैं इस अर्थ में जो सौदे को कर लेते हैं। क्योंकि वे छोड़ते कुछ नहीं और पाते सब कुछ हैं। और वे नासमझ हैं जो सपने को पकड़ लेते हैं और सपने को छोड़ना नहीं चाहते।

अगर त्याग ही करना है, तो जो हम अभी कर रहे हैं, वह त्याग ही है। सत्य को छोड़ कर स्वप्न को पकड़े हुए हैं। महावीर और बुद्ध ने जो किया वह त्याग नहीं है। वह त्याग कैसे हो सकता है? उन्होंने तो स्वप्नों को छोड़ा और सत्य को पाया।

अगर सपनों को छोड़ना और सत्य को पाना त्याग है, तो जो मिट्टी को छोड़ दे और सोने को पा ले उसे त्याग कहेंगे? हम त्यागी हो सकते हैं, वे त्यागी नहीं हैं और हम अज्ञानी हैं इसलिए त्यागी हैं। जो ज्ञानी है वह छोड़ता नहीं, पा लेता है। और जो अज्ञानी है वह छोड़े बैठा रहता है और पाने से वंचित रह जाता है। ज्ञान में उपलब्धि है, पर हमें वह त्याग जैसा दिखाई पड़ेगा।

जैसे बहुत लोग सोये हों और कोई एक व्यक्ति जाग जाय और उसे पता चले कि उसने नींद का त्याग कर दिया है। जैसे बहुत लोग भ्रम में हों और कोई एक आदमी का भ्रम टूट जाय और लोगों को पता चले कि उसने त्याग कर दिया।

विषाक्त कुआं

एक कहानी मैं कहता था। एक गांव में एक जादूगर गया। उसने कुएं में मंत्र फूंककर कुछ डाल दिया और कहा कि इस कुएं का पानी जो भी पियेगा पागल हो जायेगा।

उस गांव में केवल दो ही कुएं थे। एक कुआं गांव का था, एक राजा के महल में था, राजा का था। गांव का कुआं विषाक्त हो गया और उस फकीर ने कहा था—अब जो भी इस पानी को पियेगा पागल हो जायेगा। लेकिन मजबूरी थी। गांव में लोगों को उस कुएं का पानी पीना ही पड़ा क्योंकि बिना पानी के जीना संभव कैसे था? सारे लोगों को पानी पीना पड़ा और सांझ होते होते सारे गांव के लोग पागल हो गये।

लेकिन राजा के घर का अपना कुआं था। राजा ने, उसकी रानियों ने, उसके वजीरों ने उसका पानी पिया और वे पागल होने से बच गये।

लेकिन सांझ गांव में एक खबर फैल गई कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। राजा कुछ गड़बड़ बातें करता है। राजा के कुछ ढंग-डौल पता नहीं चलते। और सारे गांव के लोगों ने महल के सामने खड़े होकर आवाज लगाई कि राजा का दिमाग खराब हो गया है। कहा कि आप सिंहासन छोड़ दें, अब हम ठीक आदमी को सिंहासन पर बिठायेंगे।

राजा बहुत घबड़ाया, वह अपनी छत पर खड़ा हुआ था। उसने वजीरों को कहा, 'अब क्या किया जाये? यह तो बड़ी मुश्किल हुई, सारा गांव पागल हो गया है। लेकिन इस पागल गांव में हम अकेले अगर पागल नहीं हैं, तो स्वाभाविक है कि हम पागल मालूम पड़ें। तो अब क्या करें?'

उसके वजीरों ने कहा, 'एक ही रास्ता है। उस कुएं का पानी हम भी जल्दी से पीलें।' और तब राजा ने, उसके वजीरों ने उस रात उस कुएं का पानी पिया और रात भर फिर गांव में जलसा होता रहा कि राजा का दिमाग ठीक हो गया।

तो इस दुनिया में जहां अज्ञानियों की बहुत भीड़ है और अंधकार घना है, जो अंधकार को छोड़ते हैं और प्रकाश को उपलब्ध होते हैं, वे त्यागी मालूम होते हैं। इस पागलों की भीड़ में जो व्यर्थ को छोड़ते हैं और सार्थक को पाते हैं, वे त्यागी मालूम होते हैं। जबकि सच ये है कि त्यागी हम हैं और ठीक ठीक जीवन में अर्थ को उपलब्ध करनेवाले वे लोग हैं, जिन्हें हम त्यागी कहते हैं।

त्याग कुछ छोड़ना नहीं है, त्याग वस्तुतः पाना है। जैसे मेरे हाथों में मिट्टी भरी हो और कोई मुझे हीरे-जवाहरात दे दे और मैं मिट्टी को छोड़ दूं, हीरे-जवाहरात के लिए खाली करने को मुट्ठी ताकि हीरे-जवाहरात झेल सकूं। नीचे खड़े हुए लोग देखेंगे कि मैंने मुट्ठी खोल दी है और सारी मिट्टी त्याग कर

दी है जो मेरे हाथों में थी। जैसी उनकी नासमझी होगी वैसी हमारी नासमझी है कि हम समझते हैं कि महावीर ने त्याग किया।

महावीर को जो मिल रहा है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता, उसके प्रति हम अंधे हैं। महावीर जो छोड़ रहे हैं केवल वही हमें दिखाई पड़ता है। उसी के प्रति हममें आंखें हैं। महावीर ने स्वप्नों को छोड़ दिया है। वही हमें दिखाई पड़ता है। क्योंकि हम केवल सपने देख रहे हैं। और महावीर जिस सत्य को पा रहे हैं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि सत्य को देखने के लिए हमारे पास कोई आंख नहीं है। इसलिए महावीर त्यागी मालूम होते हैं, बुद्ध त्यागी मालूम होते हैं, संन्यासी छोड़ता हुआ मालूम पड़ता है। लेकिन जो सच में संन्यासी है, वह छोड़ता कुछ भी नहीं, केवल सपने छोड़ता है और पाता सब कुछ है।

त्यागने की नहीं, पाने की बात

तो मैं आपको कहूं कि सस्ता बहुत सस्ता सौदा है। मैं कुछ त्यागने को नहीं कहता, पाने को कहता हूं। त्याग की भाषा ही गलत है। और जिन लोगों

सत्य की दिशा में सबसे बड़ा अपराध तो तब हो जाता है जब हम सत्य के संबंध में रूढ़ धारणाओं को दूसरों पर थोपने का आग्रह करते हैं। यह आग्रह अत्यंत घातक दुराग्रह है।

ने धर्म को त्याग की भाषा में खड़ा कर दिया है, उन्होंने धर्म को नुकसान पहुंचाया है। क्योंकि सारे लोग छोड़ने की हिम्मत ही नहीं कर पाते और इसलिए धर्म में उत्सुक ही नहीं होते।

मैं आपको कहता हूं कि पाने की हिम्मत तो आप कर ही सकते हैं? छोड़ने का सवाल नहीं है। धर्म को त्याग समझें ही नहीं, वह त्याग है भी नहीं। धर्म तो उपलब्धि है। धर्म तो विधायक उपलब्धि है। कुछ पाना ही है वहां, खोना कुछ भी नहीं है। जिन लोगों ने शक्ल दी है धर्म को नकार की, छोड़ने की, खोने की उन्होंने धर्म को नुकसान पहुंचाया है।

इस जमीन पर जो नुकसान पहुंचा है धर्म को, वह नास्तिकों के द्वारा नहीं पहुंचा है। वह उन लोगों के द्वारा भी नहीं पहुंचा है, जो कहते हैं—ईश्वर नहीं

है, जो कहते हैं--आत्मा नहीं है। वह उन लोगों के द्वारा भी नहीं पहुंचा है जो कहते हैं मोक्ष वगैरा सब बकवास हैं।

नुकसान उन लोगों के द्वारा भी नहीं पहुंचा जिन्होंने विज्ञान के बड़े चमत्कार किये हैं और जिन्होंने विज्ञान की बड़ी शक्तियां ईजाद की हैं। धर्म को नुकसान तो पहुंचा है उन लोगों के द्वारा जिन्होंने धर्म को नकार (Negative) की भाषा में, छोड़ने की भाषा में, त्यागने की भाषा में, प्रस्तावित किया है। और छोड़ने की बात पर हमारा मन राजी नहीं होता।

छोड़ने के ख्याल से हम वंचित रह जाते हैं, हम रुक जाते हैं। लेकिन मैं आपको दूसरे कोने से धर्म की बात कहना चाहता हूं। धर्म छोड़ना बिल्कुल नहीं है, धर्म पाना है और कमजोर से कमजोर आदमी पाने को राजी हो सकता है। जबकि त्यागने को ताकतवर से ताकतवर राजी नहीं हो सकता है। हम कमजोर लोग हैं, और जब छोड़ने की भाषा में बातें की जाती हैं तो सब पलट जाता है। मन बहुत भारी और बोझिल हो जाता है।

परमात्मा की प्यास

मैं आपसे सिर्फ स्वप्न छोड़ने को कहता हूं। कमजोर से कमजोर स्वप्न छोड़ने को राजी हो सकता है। अत्यंत कमजोर भी सपने को छोड़ने को राजी हो जायेगा। इतना कमजोर इस जमीन पर कोई भी नहीं है, जो स्वप्न न छोड़ सके। और जो इतना कमजोर हो उसके लिए फिर कोई रास्ता नहीं हे। लेकिन इतना कमजोर कोई है नहीं। इसलिए सबके लिए रास्ता है। इतना कमजोर सच में कोई नहीं है, इसलिए सबके लिए रास्ता है। और इतनी आकांक्षा से शून्य भी कोई नहीं है कि पाने को उत्सुक न हो। जो लोग धन पाने को इतने उत्सुक हैं, जो लोग यश पाने को इतने उत्सुक हैं, क्या वे लोग परमात्मा या आत्मा को पाने के लिए उत्सुक नहीं होंगे? वे निश्चित ही उत्सुक हो सकते हैं। क्योंकि परमात्मा धन से बहुत बड़ा और आत्मा यश से बहुत बड़ी है। जो यश को पाने के उत्सुक हैं, वे विराट आत्मा को पाने के लिए उत्सुक न हों, ये मेरी समझ में नहीं आता। बल्कि मैं आपसे कहूं--हम जब भी कुछ पाना चाहते हैं तब मूलतः हमारी प्यास परमात्मा को हीं पाने की होती है।

एक आदमी यश पाना चाहता है, उससे पूछें– कितने यश से तृप्त हो जाओगे, उससे कहें--ठीक ठीक सीमा बताओ, कितने यश से तृप्त हो जाओगे? और क्या आप सोचते हैं, वह कोई सीमा बताने को राजी हो जायेगा? अगर वह सीमा भी बताये तो फिर उससे कहें– थोड़ा और सोच लो, क्या इतने से सच-

मुच तृप्त हो जाओगे? वह थोड़ी और सीमा बढ़ा देगा। क्या आप सोचते हैं कोई भी व्यक्ति यश से तृप्त हुआ है; किसी भी सीमा पर? क्यों नहीं हुआ? शायद ही आप सोचते होंगे। कितने धन से कोई आदमी तृप्त हो सकता है? कितने ही धन से तृप्त नहीं हो सकता! कितनी शक्ति और समृद्धि से तृप्त हो सकता है? कितनी ही शक्ति और समृद्धि से तृप्त नहीं हो सकता, कितनी ही। क्यों? क्योंकि हमारे भीतर जो आकांक्षा है वह अनंत संपत्ति पाने की है। वह छोटे-मोटे जीवन से तृप्त होने की नहीं है। और हमारे भीतर जो आकांक्षा है, वह अनंत राज्य पाने की है, वह छोटे-मोटे राज्य को पाने से तृप्त नहीं होती। और हमारे भीतर जो आकांक्षा है, परमात्मा को पाने की है, उससे पहले वह तृप्त नहीं हो सकती।

तो मैं आपको कहूं कि आपकी छोटी से छोटी वासना के पीछे भी उसी अनंत की वासना छिपी रहती है और आपकी छोटी से छोटी आकांक्षा के पीछे भी वही परम अभीप्सा, वही अनंत महत्वाकांक्षा है।

मैं आपको दो बातें कहना चाहता हूं: एक बात तो यह कहना चाहता हूं कि धर्म छोड़ना बिल्कुल नहीं है वह सत्य को पाना है। उसे पाने की भाषा में सोचें। और दूसरी बात आपको कहूं: आपकी प्रत्येक आकांक्षा और वासना में चरम रूप से वही छिपा है जो परमात्मा है, आत्मा है या सत्य है। अगर आप अपने भीतर वासनाओं को खोजें और उघाड़ें तो परमात्मा के लिए ही आकांक्षा का अनुभव करेंगे।

क्या करते हैं क्या नहीं करते?

बहुत दिन हुए, १५०० वर्ष हुए, एक भारतीय साधु चीन गया था। वह वहां एक आश्रम में मेहमान था। उस आश्रम में बहुत से साधु थे। उस आश्रम के गुरू ने इस साधु का स्वागत किया। भारतीय साधु का स्वागत किया और उसके स्वागत में एक सभा की। उस सभा में उसने बताया--अपने आश्रम के परिचय में बताया--कि हमारे साधु शराब नहीं पीते हैं, मांस नहीं खाते हैं, चोरी नहीं करते हैं, बेईमानी नहीं करते हैं, परिग्रह नहीं रखते हैं। ये नहीं करते हैं, वो नहीं करते हैं। इसी तरह की उसने बहुत सी बातें बतायीं।

वह भारतीय साधु बैठा सुनता रहा। फिर वह खड़ा हुआ और उसने कहा: क्षमा करें, मैं एक बात पूछूं? मैं ये तो समझ गया कि ये साधु क्या क्या नहीं करते हैं। क्या मैं ये पूछूं कि ये क्या क्या करते हैं?

उसने कहा : क्या मैं पूछूं कि ये करते क्या हैं ? मैं ये तो समझ गया कि ये क्या क्या छोड़ते हैं। क्या मैं ये पूछूं कि ये पाते क्या हैं ?

क्या आप सोचते हैं कि सिर्फ छोड़ने पर कोई जीवन खड़ा हो सकता है। छोड़ना नकार है, छोड़ना शून्य है। छोड़ने पर कोई जीवन खड़ा नहीं हो सकता। छोड़ना मृत्यु है, छोड़ने पर मृत्यु खड़ी हो सकती है। जीवन खड़ा नहीं हो सकता है। छोड़ना तो मत्यु है, छोड़ने पर मृत्यु ही खड़ी हो सकती है, जीवन नहीं खड़ा हो सकता।

परम संन्यासी कौन ?

मृत्यु का मतलब है कि जहां सब कुछ छूट जाय। तो छोड़ने पर मृत्यु ही खड़ी हो सकती है। जीवन तो पाने पर खड़ा होता है। जीवन तो उपलब्धि पर खड़ा होता है। जीवन तो विराट से विराट की उपलब्धि पर खड़ा होता है। और परम संन्यासी वह नहीं है, जिसने घरबार छोड़ दिया है। असल में परम संन्यासी वह है जिसने परमात्मा को उपलब्ध कर लिया है। संसार को छोड़ना उस उपलब्धि के लिए कोई अर्थ नहीं रखता।

यह वैसे ही है जैसे हमने कमरे में प्रकाश किया और अंधकार विलीन हो गया। कोई कहे—हमने अंधकार छोड़ दिया तो वह गलत कहता है। अंधकार छोड़ा नहीं, हमने तो केवल प्रकाश किया। हमने केवल प्रकाश पाया अंधकार नहीं छोड़ा। अंधकार छोड़ा भी नहीं जा सकता। छोड़ने का प्रयास भी हो तो भी नहीं छोड़ा जा सकता। अंधकार को छोड़ते कभी किसी को देखा है ? कभी अंधकार को त्याग करते किसी को देखा है ? कभी अंधकार को घर से बाहर विदा करते किसी को देखा है ?

अंधकार न विदा हो सकता है, न त्यागा जा सकता है। न अंधकार छोड़ा जा सकता है, न अंधकार का विनाश हो सकता है। अंधकार का विनाश करते हुए कभी किसी को देखा है ? हां, प्रकाश का आगमन होता है, प्रकाश का स्वागत होता है, प्रकाश की उपलब्धि होती है और अंधकार नहीं पाया जाता। असल में अंधकार था ही नहीं। अंधकार केवल प्रकाश के न होने का नाम था। संसार की जो पकड़ है, वह ब्रह्म की पकड़ का अभाव मात्र है। संसार पर जो हमारी जकड़ है, जो आसक्ति है, जो जोड़ है, जो उसे पकड़े रहने का मन है, वो जो हम सपने को पकड़े हैं– वो केवल जागरण का अभाव है। अन्यथा कोई भी सपने को पकड़ने को राजी नहीं हो सकता। अभी इस कक्ष में अंधकार भर जाय और हम उसे निकालने लगें। क्या हम निकाल पायेंगे ? हम टूट जायेंगे,

अंधकार नहीं जायेगा। कोई कहे--अंधकार को निकालो और हम निराश हो जायें, अंधकार न निकले और हम सोचें कि अंधकार बहुत शक्तिशाली है और हम बहुत कमजोर हैं, तो यह नासमझी है। अंधकार बिल्कुल ही शक्तिशाली नहीं है। लेकिन अंधकार को निकालने का उपाय अंधकार को त्याग करना नहीं है। लेकिन अंधकार को निकालने का उपाय प्रकाश को उपलब्ध करना है।

उपलब्धि पहले है, उपलब्धि प्राथमिक है और त्याग उसका अनुकरण करता है। छोड़ना उसके पीछे आता है, छाया की तरह त्याग आता है। पाना पहले आता है, त्याग छाया की तरह उसके पीछे आता है। पर हमको पहले छाया ही दिखती है। इसलिए त्याग ही पहले दिखता है।

मैं आपको आज यही कहना चाहता हूं कि धर्म त्याग नहीं है। धर्म उपलब्धि है। और अगर ये दिखाई पड़े तो धर्म सिर्फ नकारात्मक न रह कर विधायक विज्ञान बन जाता है। तो मैं आपको नहीं कहता चोरी छोड़ें। मैं आपको नहीं कहता बेईमानी छोड़ें। मैं आपको नहीं कहता झूठ छोड़ें, मैं आपको नहीं कहता हिंसा छोड़ें। मैं सिर्फ कहता हूं-"आत्मा को उपलब्ध करें।"

विधायक संकल्प

मैं आपको कहता हूं आत्मा को उपलब्ध करने की दिशा में विधायक संग्रह करें। छोड़ने का विचार न करें, कुछ पाने का विचार करें और आप पायेंगे जैसे जैसे पाने की गति बढ़ती है, वैसे वैसे छोड़ना अपने आप घटित होता जाता है। प्रकाश की तरफ अग्रसर हों और यह विधायक संकल्प अपने भीतर करें कि प्रकाश को पाना है। अंधकार का विचार न करें, अंधकार के विचार की कोई जरूरत नहीं है।

मैं देखता हूं, जैसे ही किसी व्यक्ति को ध्यान होता है धर्म का, वैसे ही उसे छोड़ने का ख्याल उठता है। क्या छोड़ दूं? कुछ लोग जगह जगह मुझसे पूछते हैं--क्या छोड़ें? हम क्या त्याग दें? मैं उनसे कहता हूं--तुम्हारे पास कुछ होता, तो मैं कहता तुम त्याग कर दो। तुम्हारे पास सिवाय सपनों के कुछ है ही नहीं जो त्याग करने को कहूं। तुम समृद्ध होते, तो त्याग करते। तुम्हारे पास समृद्धि का तो कुछ पता नहीं, सिवाय दरिद्रता के और कुछ तुम्हारे पास नहीं। दरिद्र छोड़ने के सपने देखता है, जिनके पास कुछ नहीं है, वो त्याग करने का ख्याल करते हैं। कैसा आश्चर्यजनक है!

मैं आपको नहीं कहता कुछ छोड़ने को क्योंकि कुछ है ही नहीं आपके पास। मैं तो आपको पाने को कहता हूं और पाने के लिए बड़ा भिन्न प्रयास करना

होता है। छोड़ने से बिलकुल ही भिन्न प्रयास करना होता है। स्मरण रखें अगर धर्म की नकारात्मक पकड़ हो, तो सारे प्रयास दूसरे ढंग के होते हैं और धर्म की विधायक पकड़ हो, तो सारे प्रयास दूसरे ही ढंग के होते हैं। बहुत भेद पड़ जाता है।

एक में हम छोड़ने के ख्याल में रहते हैं, कुछ थोड़ा हम छोड़ने की कोशिश करते हैं। दूसरे में हमें छोड़ने का ख्याल नहीं रहता उल्टे हम कुछ पाने की फिकर करते हैं। तो मैं स्मरणपूर्वक आपको ये ख्याल, ये विचार, ये बोध दे देना चाहता हूं कि आप धर्म को पाने के विचार से सोचें। सोचें कि मुझे क्या पाना है? और जब धर्म से पूछें कि हम क्या करें? तो पूछें कि हम क्या पायें? ये न पूछें कि हम क्या छोड़ें? ये पूछें कि हम क्या पायें? हम क्या उपलब्ध करें? और जब आप यह पूछेंगे कि हम क्या उपलब्ध करें तो बहुत भिन्न दिशा, बहुत भिन्न आयाम, बहुत नये मार्ग का उद्घाटन होगा।

जो धर्म से पूछेगा—हम क्या छोड़ें? धर्म उसके लिए नीति की तरह उपस्थित होगा। और जो धर्म से पूछेगा कि हम क्या पायें? उसके लिए धर्म योग की तरह उपस्थित होगा। धर्म से जो पूछेगा—हम क्या छोड़ें? उसके लिए धर्म नीति की तरह उपस्थित होगा कि चोरी छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, ये न करो, वो न करो। धर्म से पूछियेगा कि हम क्या करें, हम क्या पायें? तो धर्म योग की तरह उपस्थित होगा।

नीति और योग में अंतर

धर्म की दो शक्लें हैं: एक नीति की शक्ल है, दूसरी योग की शक्ल है। जब धर्म जीवित होता है तो वह योग होता है और जब धर्म मुर्दा हो जाता है तब नीति बन जाता है। जो धर्म मर जाता है वो नैतिक रह जाता है। जो धर्म जीवित होता है वो यौगिक होता है। वो हिंसा नहीं छोड़ता, उसमें अहिंसा उत्पन्न होती है। वो अपरिग्रह नहीं साधता, अपरिग्रह उत्पन्न होता है। वो साधता कुछ और है। वो योग साधता है, समाधि साधता है, ध्यान साधता है। वो कुछ और साधता है। दृष्टि बिल्कुल भिन्न हो जाती है।

जब नकार से कोई पकड़ता है तो नीति हाथ में रह जाती है। नैतिक होना बुरा नहीं है। लेकिन नैतिक होने मात्र से कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता। नैतिक होना बुरा नहीं है। लेकिन नैतिक होने से ही कोई धार्मिक नहीं होता। ये हो सकता है, एक आदमी चोरी न करे। ये हो सकता है, एक आदमी बेईमानी न करे। ये हो सकता है, एक आदमी असत्य न बोले। लेकिन

इतने से ही काफी नहीं है कि वो सत्य को जान ले। इतने से ही काफी नहीं है कि उसे आत्मा का अनुभव हो जाये।

एक नास्तिक भी नैतिक हो सकता है। लेकिन वह धार्मिक नहीं हो सकता। एक नास्तिक बिल्कुल नैतिक हो सकता है। नैतिक होने में नास्तिकता बाधा नहीं है। नैतिकता कोई क्रांति नहीं है। नैतिकता कोई नये सत्य के जगत से संबधित नहीं करती है। योग जरूर नये सत्यों का उद्घाटन करता है। और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि कोई नैतिक कितना ही बड़ा हो जाय योग उसे उपलब्ध नहीं होता। लेकिन अगर कोई योग को साधे तो नीति अपने आप आ जायेगी। ये असंभव है कि योगी और अनैतिक हो। यह बिल्कुल सहज है कि नैतिक आदमी योगी न हो। योग का नीति से कोई वास्ता नहीं है, इस अर्थों में कि नीति साधने से योग नहीं आता। लेकिन योग साधने से नीति अपने आप चली आती है। धर्म को योग की भांति पकड़ें, धर्म को योग की दृष्टि से पकड़ें। और पाने के लिए अगर पूछेंगे तो सबसे पहली बात यह ख्याल में आयेगी। इसके

चिन्तन के लिये निर्भार और पक्षपात मुक्त चित्त चाहिये।

पहले की कुछ और पाने लगें जीवन को पाना है। जिन्हें जीवन ही उपलब्ध नहीं है वे और क्या उपलब्ध करेंगे? सबसे पहली बात जीवन को उपलब्ध करना है। अभी जिसे हम जानते हैं, वह जीवन नहीं है।

एक साधु हुआ। उसके पास एक व्यक्ति बहुत दिन से आता था।

एक दिन उस व्यक्ति ने उस साधु से कहा: मैं बहुत वर्षों से आपके निकट आया हूं और बहुत निकट से आपको देखा है और बहुत गहरी आंख से आपको देखा है। कई तरह से कोशिश की कि कोई दोष, कोई पाप, कोई भूल आपमें दीख जाय। लेकिन कुछ नहीं दीखता। अपनी तरफ से मैंने सब तरह से देख लिया कोई कालिमा, कोई भूल आपमें दिखाई नहीं पड़ती। अब मैं आपसे पूछता हूं: बाहर से तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, लेकिन क्या भीतर भी आपमें कोई कालिमा नहीं है? बाहर से तो कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता लेकिन क्या भीतर भी दोष के बीज नष्ट हो गये हैं? बाहर तो प्रकाश ही प्रकाश मालूम होता है लेकिन कहीं दिया तले अंधेरा तो नहीं है? सोचा कि अब आपसे ही पूछूं क्योंकि बाहर से तो मैं देख सकता था, लेकिन भीतर से तो आप ही अकेले देखते हैं। इसलिए आपसे ही पूछता हूं।

उस साधु ने कहा : इससे पहले कि इसका उत्तर दूं, एक और जरूरी बात बता देना है, अन्यथा कहीं भूल न जाऊं। कल अचानक तुम्हारे हाथ पर मेरी दृष्टि पड़ी तो पाया कि तुम्हारी उम्र समाप्त हो गई है। ठीक सात दिन बाद सूरज डूबेगा और तुम भी डूब जाओगे। ये भूल न जाऊं इसलिए बता दिया। कल भी बातचीत में भूल गया था। और आज फिर तुमने बातचीत शुरू की है। इसलिए सोचा कि पहले ही बता दूं ताकि फिर न भूल जाऊं। हां, अब तुम पूछो ?

वह व्यक्ति बैठा था, उठकर खड़ा हो गया। उस साधु ने कहा : बैठो और पूछो। तुम क्या पूछ रहे थे ?

वह व्यक्ति बोला : मुझे कुछ याद नहीं आता कि मुझे क्या पूछना है। अभी तो मुझे आज्ञा दीजिए, फिर आऊंगा।

साधु ने कहा : जो पूछना है, अभी पूछ लो। मैं जानता हूं, अब तुम कभी नहीं आओगे। वह बोला—नहीं, समय मिला तो अवश्य आऊंगा। साधु बोला—मैं तुम्हारे हाथ-पैर कांपते देखता हूं। मुझे डर है कि तुम घर तक भी पहुंच पाते हो या नहीं।

वह सीढ़ियां उतरता था, सीढ़ियों पर ही गिर पड़ा। किसी तरह उसे घर पहुंचाया गया। घर वह खाट पर लग गया। सात दिन बाद सूरज डूबने को है। घर में उदासी छाई है। सबके गले रुंधे हैं। वो मरणासन्न है। मृत्यु निकट है।

उसी समय वह साधु उसके घर पहुंचा। वो आंखें बन्द किये हुए करीब करीब मृत ही पड़ा हुआ है। साधु ने उसे आवाज दी। बहुत मुश्किल से उसने आंख खोली। हाथ जोड़कर साधु को नमस्कार किया। साधु ने कहा : एक बात पूछने आया हूं। सात दिन में कोई पाप किया ? सात दिन में भीतर कोई पाप उठा ?

उस आदमी ने कहा : मरते हुए आदमी के साथ क्या मजाक करते हैं ! मृत्यु इतनी निकट थी कि मेरे और मृत्यु के बीच इतना फासला ही नहीं था कि पाप उठें। मौत इतने करीब थी कि बीच में अन्तराल नहीं था, स्थान नहीं था खाली कि पाप उठ सकें। ख्याल ही नहीं रहा कि जी रहा हूं या मर रहा हूं। ये सात दिन किस तरह गुजर गये ! बार बार मुझे लगता है कि जैसे अब मरा। सात दिन पूरे हो गये, अब मैं सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा हूं और कुछ भी नहीं।

साधु ने कहा : वास्तव में अभी तुम्हारी मृत्यु आई नहीं है। यह केवल तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर है। वो जो तुमने पूछा था कि भीतर कालिमा शेष तो

नहीं है? उसका उत्तर दिया है। उसने कहा– मृत्यु से मेरी जिंदगी बदल गई अब दुबारा मैं वही आदमी नहीं हो सकता। मृत्यु के बोध ने मुझे धर्म में प्रतिष्ठित कर दिया।

जिसकी मौत नहीं, वह जीवित

आप ये मत सोचिये कि सात दिन बाद मृत्यु थी, इसलिए परिवर्तन हुआ। ७० वर्ष बाद भी क्या फासला होता है? जीवन में ७० वर्ष और सात दिन में अंतर नहीं है, गणित में होगा। जिंदगी में नहीं है। जिंदगी में ७० वर्ष, ७ दिन और ७ क्षण बराबर हैं। गणित में फासले हो सकते हैं, जिंदगी में फासले नहीं हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मौत ७ दिन बाद आई या ७० वर्ष बाद? मौत है, इससे फर्क पड़ना चाहिए। और मौत का होना हमें घबरा क्यों देता है? मौत का होना हमें इसलिए घबरा देता है कि जीवन को हम जानते नहीं, अन्यथा मौत क्या घबड़ायेगी! जो जीवन को जानता है, उसे मौत क्या घबड़ायेगी? परीक्षा यही है कि जिसे मौत न घबड़ाये उसने जीवन को जान लिया।

जीवन को जानने की और कोई परीक्षा नहीं है। जिसने जीवन को जाना, उसे मौत नहीं घबड़ा सकती। जिसे मौत अर्थहीन हो जाये उसने जीवन को पहचाना। जिसे मौत विलीन हो जाये, वह जीवन से संबंधित हुआ। वह जीवित हुआ। जिसको मौत नहीं है वह जीवित हुआ। जिसने जाना कि मेरी मौत नहीं है, वह जीवित हुआ। उसने जीवन से संबंध स्थापित किया।

धर्म का विधायक जो विज्ञान है उससे पहली बात पूछने की है कि जीवन क्या है? और हम उस जीवन से संबंधित कैसे हों? हम अभी जिससे संबंधित हैं, मृत्यु से संबंधित हैं, जीवन से नहीं। हम जिन जिन चीजों से संबंधित हैं, सब मृत्यु हमसे छीन लेगी।

इस देह को हम समझते हैं 'हमारा' होना, यह मृत्यु हमसे छीन लेगी। यह देह मृत है, इसलिए मृत्यु छीन लेगी। जो मृत है मृत्यु केवल उसी को छीन सकती है। जो मेरे भीतर शाश्वत है, जो मेरे भीतर चैतन्य है, जो मेरे भीतर जीवित है, उसे मृत्यु नहीं छीन सकती। वही अकेला शेष है। अपने में हमें खोजना है क्या क्या मृत है और क्या क्या जीवित है?

अपने भीतर एक भेद करना है, एक फासला करना है अपने भीतर कि क्या क्या मेरे भीतर मृत है?

आंख बन्द करके अपने भीतर खोजें कि क्या मैं देह हूं? और आप बहुत स्पष्ट अनुभव करेंगे कि आप देह नहीं हैं। देह आप नहीं हैं, क्योंकि जो

चेतना देह के प्रति जाग्रत हो रही है, जो चेतना देख रही है कि देह है, वह चेतना स्वयं देह नहीं है। जो भी देखा जा सकता है, देखने के कारण प्रथक हो जाता है। जिसके प्रति भी अवेयरनेस (Awareness) हो सकती है, जिसके प्रति भी हम जाग सकते हैं, जागने के कारण ही उससे अन्यथा और अलग हो जाते हैं।

नया बोध

मैं आपको देख रहा हूं, यह काफी है कि मैं 'आप' नहीं हूं। मैं इन दीवालों को देख रहा हूं, यह तय है कि मैं दीवाल नहीं हूं। क्योंकि जो देख रहा है मेरे भीतर वह, जो चेतना मेरे भीतर जागकर देख रही है, मेरे भीतर वह दीवाल कैसे हो सकती है? अगर मैं जागकर अपनी देह को देखूं, तो आप पायेंगे कि देह एक खोल की तरह है। स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि देह एक खोल की तरह है और आपकी चेतना बहुत भीतर है। देह से जागना पहला चरण है जीवन की तरफ प्रवेश पाने का। देह में सोये होना स्वप्न में प्रवेश है। देह में जागना स्वप्न से बाहर होने का द्वार है। देह के प्रति बोध से भरना है और उस एकाग्र क्षण में जब आप अपने भीतर खोजते हैं और चेतना भटकती है और देह की दीवालों से लग-लग कर लौट आती है वापिस, तो आप अनुभव करेंगे कि देह एक खोल की तरह है और आपके भीतर एक नये बिंदु का जो कि देह नहीं है, बोध होना शुरू हो जायेगा।

पहला चरण मैं देह नहीं हूं, इस बोध का है। फिर और गहरा चरण उठाना पड़ेगा और देखना पड़ेगा कि क्या मैं विचार हूं? क्या मैं मन हूं? स्वप्न में देह को भूल जाते हैं, लेकिन मन काम करता है। लेकिन जब स्वप्न भी बंद हो जाते हैं और गहरी सुसुप्ति में होते हैं वहां मन भी काम नहीं करता। वहां मन भी सोता है। लेकिन हम होते हैं।

उस सारे मृत को इनकार करना है अपने भीतर से, जो जीवित नहीं और अंतिम रूप से उसी शिखा को पकड़ लेना है, जो जीवन है। यही योग है।

धर्म का विधायक विज्ञान है अपने भीतर निरीक्षण, अपने भीतर यह विवेक, अपने भीतर यह भेद, अपने भीतर यह बोध है कि क्या क्या मृत है। कभी करें। इसी करने का नाम ही साधना है। इसे चौबीस घंटे करें, यह अखंडित रूप से जीवन का एक हिस्सा बन जाये कि मैं जानूं, विचार करूं, विवेक करूं कि क्या क्या मेरे भीतर मृत है। यह बहुत स्पष्टता से अनुभव हो जाता है।

क्या यह आपको नहीं दिखाई पड़ता ? कभी आंख बन्द करके बैठें तो क्या यह दिखाई नहीं पड़ता कि मैं देह नहीं हो सकता हूं ? क्या स्वप्न में, रात की निद्रा में, आपको देह का बोध रह जाता है ? क्या आपको बोध रह जाता है, जब आप रात में नींद में होते हैं कि देह भी आपकी है। देह का तो स्वप्न में, निद्रा में, कोई बोध नहीं रह जाता है। लेकिन अपना होने का बोध तो रहता है। जागते हैं तो पाते हैं कि देह भी है। लेकिन जब सो जाते हैं तो आप तो होते हैं, पर देह नहीं होती। आपको अपना बोध होता है, लेकिन देह का बोध नहीं रह जाता है। शायद आपको अपने चेहरे का भी कोई बोध नहीं रह जाता, शायद आपको नाम का भी बोध नहीं रह जाता।

घेरों को तोड़ो

आप अपने घेरे को निद्रा की स्थिति में भूल जाते हैं। सोने में ही भूल जाते हैं और स्वप्न में तो बिल्कुल ही भूल जाते हैं। आप अगर आंख बन्द करके कुछ क्षण, कुछ घड़ी बैठ कर यह देखें, अपने भीतर खोजें कि क्या मैं देह हूं ? यह देखें, सिर्फ खोजें, कि क्या मैं देह हूं ?

सोते हैं तो देह का विस्मरण हो जाता है। सुसुप्ति में जाते हैं तो फिर मन का विस्मरण हो जाता है। लेकिन फिर भी हम होते हैं, हमारी सत्ता है। एक द्वार है कि हम पहचानें कि हम देह नहीं हैं। उसी निरीक्षण से हमने देह को पहचाना है। उसी निरीक्षण से विचार को पहचानें, तो वह मन का घेरा है, देह का स्थूल घेरा है, वह बाहर से घेरे हुए है। फिर मन का, विचारों का और वासनाओं का सूक्ष्म घेरा है जो भीतर घेरे हुए है।

जो देह के प्रति जागेगा, उसे दूसरा प्रयोग मन के प्रति जागने का करना होगा और उसे देखना होगा विचार को, मन को, और पहचानना होगा कि क्या मैं मन हूं ? और मन के भीतर चक्कर काटना होगा और उस क्षण में कोई मन के भीतर जागकर देखेगा, उसे स्पष्ट दिखाई पड़ेगा कि देह भी एक घेरा है। वह उससे बाहर है। और मन का भी एक घेरा है जो उससे बाहर है।

एक द्वार देह का, दूसरा द्वार मन का, इन दो द्वारों को जो पार करता है, वह चैतन्य में प्रविष्ट होता है। चैतन्य में प्रवेश जीवन में प्रवेश है। क्योंकि चेतना भर नहीं मरती और सब मर जाता है। चेतना भर अमृत है। बाकी सब मृत है। उस चेतना को अनुभव कर लेना जैसे कोई अंधेरे घर में दिया जला ले—वैसा ही उसका अनुभव होता है।

सारे जीवन के अंधकार में एक दिया जल जाता है एक चैतन्य का, और

उस चैतन्य से जो तादात्म हो जाता है तो सारा जीवन बदल जाता है। फिर त्याग अपने आप चला आता है उन सबका जिन्हें हमने छोड़ना चाहा था, हम नहीं छोड़ सके थे और जिन्हें हमने बुरा जाना था लेकिन बुरा जानकर भी करते थे। और जिन्हें हम विकृतियां मानते थे फिर भी जो हमें घेरे थीं, पकड़े थीं। और सारे दोष और सारे पाप जिनकी हमने कितनी आकांक्षा की थी कि छूट जायें, वे हम पाते हैं कि अपने आप झड़ गये। जैसे पके पत्ते वृक्ष से झड़ जाते हैं, वैसे ही जिसके भीतर चैतन्य का दिया जलता है, उसके बाहर सारे दोष अपने आप विलीन हो जाते हैं और झड़ जाते हैं। जैसे अंधकार विसर्जित हो जाता है, वैसे ही जीवन का अंधकार विलीन हो जाता है।

जीवन के अंधकार को विलीन करने का विधायक उपाय है योग। योग का सरलतम, सीधा सा अर्थ है 'मृत', जो है उससे तादात्म को तोड़ना, उससे आइडेंटिटी (Identity) को तोड़ना और वह जो जीवित है भीतर उससे आइडेंटिटी (Identity) को जोड़ना। उससे तादात्म खोजना। मृत से दूर होना और चैतन्य के निकट होना है। मृत से प्रथक होना और चैतन्य में प्रतिष्ठित होना है। यही ज्ञान है, यही प्रार्थना है, यही धर्म है। उसकी शांति का, उसके संगीत का, अनंत साधना का आभास, वह पहली बार जान पाता है।

वह पहली बार जान पाता है कि सारा जीवन, ये सारा जगत इतने आनंद से भरा है। वह पहली बार जान पाता है कि वह कितना शांत है, कितना संगीत पूर्ण है और कितना कृतार्थ है। और तब एक कृतार्थता और धन्यता मालूम होती है। तब श्वास लेना भी जीवन है और तब इस जगत में कोई दुख नहीं है।

धर्म का संबंध पाने से है

जिस व्यक्ति ने जान लिया मृत्यु नहीं है, उसने जान लिया इस जगत में कोई दुख नहीं है। और जिसने जान लिया मृत्यु नहीं है, उसने सब जान लिया, उसने अमृत जान लिया।

धर्म का संबंध इस विधायक ज्ञान से है। धर्म का संबंध कुछ छोड़ने, त्याग करने की भाषा से नहीं है। धर्म का संबंध पाने से है। जो पायेगा उससे कुछ छूट जाता है। जिसने कुछ पाया ही नहीं, वह छोड़ दे तो और मुश्किल में पड़ जाता है। सपने की नाव थी वह भी गई, उपलब्धि भी न हुई।

मैं आपको कुछ छोड़ने को नहीं कहता, मैं आपको पाने को कहता हूं। धर्म जीवन हो सकता है, धर्म मर गया उसकी नकारात्मक दृष्टि के कारण।

यह बातें मैंने इस आशा में कहीं कि शायद कोई बात ठीक लग जाय। यह मेरे जैसे लोगों की खेती है। पता नहीं बीज कहां गये, किस पर गये? पता ही नहीं पड़ता। यह भी पता नहीं पड़ता कि उनमें कोई अंकुर निकलता है या नहीं निकलता। यह भी नहीं पता पड़ता फूल आते हैं या नहीं। यह खेती अजीब सी है। लेकिन लाखों बीज फेंके जायें तो उनमें से एकाध बीज निकल ही आता है।

आशा करता हूं कि आपके हृदय उस बीज का स्थान बनेंगे जिसमें फूल आ ही जायेंगे। परमात्मा करे फूलों से आपका जीवन भरे, परमात्मा करे प्रकाश की ज्योति आपके जीवन में आये। यही मेरी कामना है।

★

समाधान समस्याओं से नहीं जन्मे हैं उन्हें समस्याओं के ऊपर थोपा गया है। समाधान ऊपर हैं समस्यायें भीतर हैं। समाधान बुद्धि में है, समस्यायें जीवन में हैं। और यह अन्तर्द्वन्द्व आत्मघाती हो गया है।

संकलन :
श्री निकलंक एम. एस-सी.

'जिन खोजा तिन पाइयां...'

प्रश्नोत्तर वार्त्ता

प्रश्न : युद्ध की परिस्थिति में साधक का क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर : कर्त्तव्य की बात ही सोचनी गलत है। मैं तो यह कहता हूं कि साधक का एक ही कर्त्तव्य है कि वह स्वयं को जान ले और इसके बाद जो भी करने योग्य ठीक होगा वह उससे निकलेगा। उसके चिन्तन की कोई जरूरत नहीं है। एक अन्धा आदमी मेरे पास आये और उससे मैं कहूं कि तुम्हारी आंखें हम ठीक किये देते हैं, तो वह मुझसे पूछे कि जब मेरी आंख ठीक हो जायेगी तो यह लकड़ी जो मैं हमेशा रखे रहा हूं इसके प्रति मेरा क्या सम्बन्ध रहेगा ? क्योंकि इस लकड़ी से मैं हमेशा चलता रहा हूं। इसके प्रति मेरा क्या कर्त्तव्य रहेगा ! तो मैं उससे क्या कहूंगा ? मैं उससे कहूंगा कि आंखें ठीक हो जाने पर फिर आपको जो समझ में आये वह इस लकड़ी के साथ करना क्योंकि इससे आपका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाने वाला है। अन्धा तो लकड़ी से टटोलकर रास्ता खोजता है

और स्वाभाविक है कि उसकी आंखें ठीक होने का प्रश्न उठे, तो वह यह पूछे कि जब मेरी आंख ठीक हो जायेगी तो लकड़ी तो रखनी ही पड़ेगी न ? तो हम उसको कहेंगे कि लकड़ी रखनी ही नहीं पड़ेगी क्योंकि लकड़ी तो अभी जो आंख की कमी थी उसको किसी तरह पूरा करती थी । जब आंख आ जायेगी तो लकड़ी की क्या जरूरत होगी ! आप पूछते हैं कि युद्ध की स्थिति में साधक का क्या कर्त्तव्य है ? अगर साधक हो, अगर साधना में प्रवृत्त हो, अगर थोड़ी आंख खुलनी शुरू हो, तो कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कोई विचार करने की जरूरत नहीं रह जायेगी । वैसे ही जैसे अन्धे को टटोलने का विचार करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती । उसे दिखाई पड़ता है कि मैं क्या करूं ।

बाहर नहीं, भीतर देखो

दो तरह के लोग हैं जमीन पर जिनको दिखाई नहीं पड़ता है कि मैं क्या करूं । वह हमेशा पूछते हैं कि कर्त्तव्य क्या है ? जिनको दिखाई पड़ता है वह कभी नहीं पूछेंगे कि कर्त्तव्य क्या है । क्योंकि जो दिखाई पड़ता है, ठीक जिसे दिखाई पड़ता है, उसे दिखाई पड़ता है कि कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या है । इसमें कोई गुंजाइश नहीं होती कि वह भूल कर ले । लेकिन हमारा सारा चिन्तन, चूंकि आंखें नहीं हैं, इसलिए चलता है । फिर मेरा मानना यह है कि जिसके पास आंखें नहीं हैं उसका मामला भी साफ है । युद्ध में उसका क्या कर्त्तव्य है, वह बिलकुल अन्धे को देखकर कोई भी समझ सकता है । चारों तरफ अन्धे जो कर रहे हैं वह भी वही करेगा । जिस आदमी के भीतर अभी क्रोध है, उसका युद्ध में क्या कर्त्तव्य होगा । वह लड़ाई के पक्ष में होगा । जिस आदमी के भीतर अभी घृणा है, जिस आदमी के भीतर अभी क्रूरता है, जिस आदमी के भीतर दूसरे को कष्ट देने में रस आता है, वह युद्ध के पक्ष में होगा । हजार हजार नाम लेकर युद्ध के पक्ष में हो जाता है । वह फिर आदमी कहीं भी होगा । जिस आदमी के भीतर प्रेम उत्पन्न हुआ है, जिसके भीतर कठोरता विलीन हुई है, जिस आदमी के भीतर क्रूरता विलीन हुई है, वह किसी भी स्थिति में युद्ध के पक्ष में नहीं होगा । कैसी भी स्थिति हो । और अगर जरूरत होगी तो युद्ध के लिए नहीं, युद्ध के विरोध में प्राण देगा । अगर जरूरत होगी तो युद्ध के लिए युद्ध के विरोध में प्राण देगा । लेकिन यह स्मरण रखें, कर्त्तव्य कोई दूसरा निर्धारित नहीं कर सकता है । यह मेरी मान्यता है कि कर्त्तव्य कोई दूसरा निर्धारित नहीं कर सकता है कि आप क्या करें, क्या नहीं । आप क्या करें? मेरी चर्चा में आपको समझ में नहीं आएगा कि मैं आपको कहूं कि आप क्या करें । मुझसे लोग पूछते हैं कि कैसे कपड़े पहनें ? मुझसे लोग पूछते हैं

कैसा खाना खायें ? मुझसे लोग पूछते हैं कैसे उठें, कैसे बैठें ? अभी इसमें पूछा गया है कि महावीर नग्न हो गए थे, तो सत्य की उपलब्धि में सारे लोग नंगे ही हो जायेंगे ? ठीक ही पूछा है। क्योंकि हमें हमेशा बाहर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, भीतर की कोई चीजें दिखाई नहीं पड़तीं। महावीर की नग्नता दिखाई पड़ती है, महावीर के भीतर क्या हुआ, यह दिखाई नहीं पड़ता। महावीर बाहर क्या करते हैं, दिखाई पड़ता है। महावीर भीतर क्या हो गए हैं, यह दिखाई नहीं पड़ता। दो तरह के व्यक्तित्व के हिस्से हैं : एक तो कर्म का हिस्सा है और दूसरा सत्ता का हिस्सा है। जो भी हमारा कर्म है, वह हमारी सत्ता से निकलता है। इसलिए असली सवाल कर्म कैसा हो, यह नहीं है। असली सवाल सत्ता है। असली सवाल हमारे भीतर की भावदशा है। तो यह पूछें कि भावदशा कैसी हो, यह न पूछें कि कर्म कैसे हों ? कर्म तो भावदशा के अनुकूल होगा। और कर्म तो रोज रोज पचास होंगे। उनका हिसाब मैं कैसे बताऊंगा कि आप क्या क्या करें और क्या क्या न करें। हां, यही बताया जा सकता है कि भावदशा कैसी हो, भावदशा तो एक होगी, कर्म हजार होंगे। अगर एक एक कर्म की सलाह दूसरे से लें तो बड़ी मुश्किल में पड़ जायेंगे। क्या क्या तय करेंगे ! किस किस से पूछकर तय करेंगे ! इसलिए उचित यह नहीं है कि कर्त्तव्य को विचार करें। उचित तो यह है कि अपनी सत्ता और अन्तस को विचार करें कि वह कैसा हो; तो मेरा कहना है कि सत्ता और अन्तस प्रेम से भरा हुआ होना चाहिए और साधक का हृदय तथा कर्म प्रेम से भरना चाहिए। एक ऐसी घड़ी आनी चाहिए उसके हृदय में कि प्रेम के अतिरिक्त और कुछ न रह जाय। फिर युद्ध में और शान्ति में क्या कर्त्तव्य है, वह उसके प्रेम से निकलेगा। अभी तो जो लोग युद्ध के विरोध में भी खड़े होते हैं वे भी केवल सोच-विचार कर खड़े होते हैं। युद्ध के विरोधी हैं–दुनियां में जो कहते हैं– युद्ध बुरा है, क्यों ? क्योंकि वह कहते हैं कि खतरा है, युद्ध से कहीं सारी दुनिया नष्ट न हो जाये। उनका युद्ध–विरोध भय से पैदा हो रहा है, प्रेम से नहीं। उनका जो युद्ध–विरोध है, बर्ट्रेन्ड रसल है या कोई और है, उनका सारा युद्ध–विरोध भय से पैदा हो रहा है। भय ग्रन्थि (Fear Complex) से, कि कहीं सारी दुनिया नष्ट न हो जाय इसलिए युद्ध मत करो। अगर उनको कोई विश्वास दिला दे कि दुनिया नष्ट नहीं होगी तो फिर वह तैयार हैं, क्योंकि सवाल कुछ और नहीं, सवाल तो इतना है कि दुनिया नष्ट न हो। अगर यह आश्वासन मिल जाय तो फिर युद्ध किया जा सकता है।

भय युद्ध पैदा करता है

बड़े मजे की बात है कि भय के कारण ही लोग युद्ध करते हैं और भय

के कारण ही लोग कहने लगते हैं कि युद्ध मत करें। इन दोनों की मनःस्थिति में बहुत भेद नहीं है। युद्ध के कारण ही भय पैदा होता है। डरते हैं कि कोई मिटा न दे इसलिए लड़ने को तैयार होते हैं। दूसरा भी आपसे डरता है कि कहीं यह न हमें मिटा दे, इसलिए वह तैयार होता है। सारी दुनिया में भयभीत लोग युद्ध की तैयारी करते हैं क्योंकि डर लगा हुआ है कि कोई मिटा न दे। हरेक को डर लगा हुआ है कि कोई मिटा न दे। हरेक अपनी तैयारी मे लगा हुआ है और दूसरे को तैयारी में देखकर दूसरे तैयारी करने लगते हैं कि दूसरा तैयारी कर रहा है तो खतरा है, कोई मिटा न दे। यानी करीब करीब ऐसी हालत है कि शायद ही कोई किसी को मिटाना चाहता है। लेकिन कहीं दूसरा मिटा न दे, इसलिए तैयारी कर रहा है और अब तैयारी ऐसी हालत पर पहुंच गयी है कि जरा सी चिनगारी हो, वह सब खराब कर दे। इसलिए कुछ ऐसे लोग भी हैं जो और गहरे भय से भर गये हैं, उनका यह ख्याल है कि यदि युद्ध हो गया तो सब नष्ट हो जायगा, तो अब ऐसे युद्ध से किसी भी हालत में बचना चाहिए। भय युद्ध पैदा करता है। भयभीत लोग संगठित होते

स्वतंत्रता में स्वच्छंदता का भय मालूम होता है, क्यों कि हमने मनुष्य को परतंत्रताओं से दबा रखा है और उसकी आत्मा सदा से ही उन परतंत्रताओं से छूटने को तड़पती रहती है।

हैं, शस्त्र इकट्ठे करते हैं और फिर जब भय बहुत बढ़ जाय तो कुछ भयभीत लोग कहने लगते हैं, युद्ध नहीं होना चाहिए। इनकी बातों का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि इन दोनों का आधार एक ही है। बात का मूल्य तो उस आदमी का है जिसको प्रेम पैदा हो और प्रेम कहे कि युद्ध नहीं होना चाहिए। तब किसी भी स्थिति में वह युद्ध के विरोध में खड़ा होगा और युद्ध के विरोध में खड़ा होने का यह अर्थ नहीं है कि वह जाकर मैदान में खड़ा हो जायगा कि युद्ध के विरोध में मुझे गोली मार दो। युद्ध के विरोध में खड़ा होने का मतलब यह है कि वह अपने जीवन से, अपनी चर्या से, अपने कामों से चारों तरफ प्रेम को फैलायेगा और प्रेम की एक शक्ति खड़ी करेगा दुनिया में जोकि युद्ध के विरोध में खड़ी हो सकती है। मैं जाकर खड़ा हो जाऊं और जाकर गोली खा जाऊं तो उससे कोई युद्ध बन्द होने वाला नहीं है।

सवाल यह है कि मैं अपने द्वारा अगर प्रेम की ऐसी शक्ति खड़ी कर सकूं जो

कि दीवाल बन जाय युद्ध के विरोध में, लोगों के हृदय में सद्भाव आ जाय कि किसी भी कीमत पर युद्ध अमान्य ही है, किसी भी कीमत पर युद्ध मनुष्य को पशु के तल पर ले जाता है! दुनिया में युद्ध से ज्यादा और कोई चीज मनुष्य को पशु के तल पर नहीं ले जाती। और बड़े आश्चर्य की बातें हैं, जिन बातों को हम बिलकुल बुरा कहते हैं, युद्ध में उन सभी बातों को हम ठीक कहने लगते हैं, सभी बातों को। जिन जिन बातों को हम बुरा कहते हैं— डकैती को, चोरी को, हत्या को, झूठ को, वे सभी बातें युद्ध में ठीक हो जाती हैं। जो बातें गलत हैं वह किसी भी स्थिति में ठीक नहीं हो सकतीं। जो गलत हैं वे गलत हैं, लेकिन युद्ध सबको ठीक कर देता है। इसलिए मैं कहता हूं कि युद्ध सबसे बड़ी गलती है क्योंकि जो गलतियों को ठीक कर दे, जिसके कारण सारी बुराइयां ठीक मालूम होने लगें उससे बड़ी कोई बुराई नहीं हो सकती। युद्ध सबसे बड़ी बुराई (Evil) है, जो मनुष्य को परेशान किये हुए है चार-पांच हजार वर्षों से, जबसे इतिहास ज्ञात है। अगर ख्याल करें तो मनुष्य का पूरा इतिहास युद्धों का इतिहास है, और उसमें कुछ भी नहीं है। पूरी कहानी लड़ाइयों की कहानी है और कुछ भी नहीं है। बीच बीच में जो थोड़े से शान्ति काल आते हैं वह भी झूठे हैं। वह युद्ध की तैयारियों के काल हैं, वह भी शान्ति के काल नहीं हैं। अगर दस वर्ष युद्ध नहीं होता है तो यह मत समझिये कि दस वर्ष दुनिया में शान्ति है, क्योंकि दो युद्धों के बीच की शान्ति, शान्ति नहीं, वह झूठी बात है, वह तैयारी का वक्त है, वह नयी नयी लड़ाई की तैयारी का वक्त है।

कर्त्तव्य चेतना की छाया मात्र है

अभी तक दुनिया में दो तरह के समय रहे हैं— एक युद्ध के और दूसरा युद्ध की तैयारी के। यह बड़े आश्चर्य की बात है। सिवाय इसके हमने कुछ किया नहीं पांच हजार वर्षों में। आगे भी यही करते रहेंगे। युद्ध होगा, यह मजबूरी है, क्योंकि आदमी जैसा है उससे इसके सिवाय कोई आशा नहीं की जा सकती। तो मेरे लिए यह सवाल है कि आप जैसे आदमी हैं आपके लिए कोई दूसरा कर्त्तव्य बतलाऊं। मेरे लिए सवाल यह है कि आपको रास्ता बतलाऊं कि आप दूसरे तरह के आदमी कैसे हो जायें, यानी आप जैसे आदमी हैं उसके लिए मैं कर्त्तव्य बतलाऊं, वह सब झूठा होगा। उसमें कोई मतलब नहीं हो सकता। आप जैसा आदमी जैसा कर सकता है वह कर रहा है। आपके भीतर का आदमी परिवर्तित (Transform) हो जाय तो दूसरे कर्त्तव्य शुरू हो जायेंगे। कर्त्तव्य हमेशा चेतना के साथ चलते हैं, चेतना के पीछे चलते हैं। वे चेतना की छायाएं मात्र हैं, छायाओं की भांति हैं।

तो जब चेतना बदलती है, तो कर्त्तव्य बदल जाते हैं, मगर जब चेतना नहीं बदलती तबतक कर्त्तव्य बदल नहीं सकते और अगर जबरदस्ती झूठे कर्त्तव्य को बदल लें आप, तो बड़ी दिक्कत में पड़ जायेंगे, बड़ी दिक्कत में पड़ जायेंगे आप, बहुत कठिनाई में पड़ जायेंगे। तो मैं कर्त्तव्य की बिल्कुल ही बात नहीं करता। मैं तो मात्र चेतना कैसे परिवर्तित हो, उसकी बात करता हूँ। मेरी बात आपको खुद दिखायी पड़ेगी कि क्या करने जैसा है, वह आप करेंगे। इतनी मेरी मान्यता है कि चेतना शान्त और शुद्ध हो, तो जो भी आपसे होगा वह कर्त्तव्य होगा और चेतना अशान्त और अशुद्ध हो, तो जो भी आपसे होगा वह सब अकर्त्तव्य होगा।

★

प्रश्न : **सभी संतों ने कहा है प्रेम को प्रेम जीतता है। गांधीजी ने मुसलमानों को बहुत प्रेम किया, फिर भी मुसलमानों ने उनसे कुछ प्रेम किया ? गांधीजी के प्रेम के जवाब में उन्होंने खून किया, लूटपाट की, आग लगाई, जगह जगह हुल्लड़ मचाया। उसका अर्थ क्या यह नहीं होता कि कठोर हृदय में मानवीय प्रेम का कोई असर नहीं होता ?**

उत्तर : सन्तों ने जो कहा है, बिल्कुल ठीक कहा है। एक नहीं दस गांधी हार जायें तो भी संतों ने जो कहा है वह ठीक कहा है। इसे समझ लें, एक नहीं हजार गांधी हार जायें तो भी संतों ने जो कहा है वह ठीक कहा है और गलती होगी तो कुछ और होगी। उस वचन में कोई गलती नहीं है कि प्रेम प्रेम को जीत लेता है। बहुत सी बातें हैं जो समझने की हैं। पहली बात तो समझने की यह है कि गांधीजी की सेवा, प्रेम कभी भी मुसलमानों को यह विश्वास नहीं दिला सका कि गांधी हिन्दू नहीं हैं और गांधी खुद जोर देकर हमेशा यह कहते रहे कि मैं हिन्दू हूं, जो कि उनकी गलती थी।

कोई सन्त ठीक अर्थों में न हिन्दू हो सकता है, न मुसलमान हो सकता है, न ईसाई हो सकता है और अगर यह आग्रह हो कि मैं हिन्दू हूं, मैं जैन हूं, मैं मुसलमान हूं तो स्वाभाविक है कि यह बात सीमा तोड़ देती है, दूसरे लोगों को अलग कर देती है। फिर मैं लाख कहूं कि सब धर्म समान हैं, सब धर्म एक हैं, उसका मूल्य नहीं रह जाता। क्योंकि अगर सब धर्म समान हैं तो मेरे हिन्दू होने का क्या मतलब ? अगर सब धर्म समान हैं तो मेरे हिन्दू होने का आग्रह क्यों है ? इसका मतलब क्या है। अगर सब धर्म बिल्कुल एक से हैं और उनको मैं एक सा ही मूल्य देता हूं, तो फिर मेरा किसी पक्ष में खड़े होने का प्रयोजन क्या है। फिर मुझे निष्पक्ष हो जाना

चाहिए। गांधीजी विश्वास नहीं दिला पाये कि वह हिन्दू नहीं हैं, बल्कि वह हर तरह से विश्वास दिलाते रहे कि वह हिन्दू हैं। मुसलमान को यह ख्याल महंगा था। क्यों? क्योंकि हिन्दुस्तान में जो मुसलमान हैं उसमें आधे से ज्यादा हिन्दुओं द्वारा सताये मुसलमान हैं जो कि हिन्दुओं के घेरे के भीतर थे कभी। किन्तु उनको हिन्दुओं ने (शूद्रों का अभी भी बहुत बड़ा हिस्सा है जिसको) तीन हजार वर्ष तक बहुत बुरी तरह परेशान किया और सताया, वह हिस्सा धीरे धीरे मुसलमान हुआ है। उसके दिल में बहुत पुरानी नफरत है। दुनिया का कोई मुसलमान, हिन्दुस्तान के मुसलमान को छोड़कर, हिन्दुओं के प्रति किसी तरह का विरोध नहीं रखता है, हिन्दुस्तान का मुसलमान रखता है और उसका कारण हिन्दू हैं।

चार हजार वर्षों में आपने शूद्रों के साथ जो किया है वह अत्यन्त अमानवीय है और वे सारे लोग धीरे धीरे टूटकर दूसरे पंथों में गये हैं–ईसाई हो गये हैं, मुसलमान हुए हैं और उनके भीतर बड़ी गहरी घृणा और बड़ी गहरी विद्वेष की स्थिति है। जब भी कोई हिन्दू का उनके सामने नाम लेता है तो उनका सारा खून, हजार वर्ष तक का खून, उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। इसके पीछे कोई एक दो दिन की बातें नहीं होतीं, बातें बड़ी पुरानी होती हैं। जरा गौर करके देखें, हमने क्या किया है शूद्रों के साथ? दुनिया की किसी कौम ने अपने किसी हिस्से के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं किया है जैसा हमने किया है। ज्ञान से वंचित, प्रेम से वंचित, समाज की समस्त सभ्यता से वंचित, सब भांति के अधिकारों से वंचित। अपमान के सिवाय जिनका कोई भाग्य नहीं है ऐसे करोड़ों लोग हैं। जिनको हम बहुत बड़े महापुरुष कहें, जिन्होंने स्मृतियां लिखी हैं, उन्होंने भी लिखा है कि अगर शूद्र के कान में वेदों के वचन पड़ जायें तो उसके कान में शीशा पिघलाकर भरवा दें। यह शूद्र टूट रहा है हिन्दू से। वह बौद्ध हो रहा है, ईसाई हो रहा है, वह मुसलमान हुआ है और उसके भीतर जो घृणा है वह गहरी है।

प्रेम हारने की भाषा में भी सोचता है

तो गांधी का जब भी बार बार कहना है 'हिन्दू', तभी उनके मन में संदेह हो जाना स्वाभाविक था। फिर गांधीजी का प्रेम राजनीति से इतना लिप्त था और संयुक्त था कि वह एकदम शुद्ध नहीं हो सकता है; क्योंकि पूरे वक्त उस प्रेम का अर्थ भी नहीं मालूम होता है कि मतलब क्या है। मतलब क्या है कि अगर मुसलमान गांधी के प्रेम से जीत लिया जाय, जैसा इस प्रश्न में पूछा गया है। आपको यह डर क्यों लगता है कि नहीं जीता। आप जीतने का मतलब क्या चाहते थे? हिन्दू जब सोचता है कि मुसलमान जीत लिया जाय प्रेम से, तो मतलब क्या है?

मतलब यह कि हिन्दुस्तान अखंड रह जाय। मतलब यह कि हिन्दू की श्रेष्ठता (Supremacy) हो और मुसलमान नीचे आ जायें, जीत लिये जायें। जीत लेने की भाषा ही गलत है। प्रेम असल में जीतने की भाषा को ही नहीं सोचता है, प्रेम हारने की भाषा में सोचता है। और जहां जीत की भाषा शुरू हो जाती है वहीं युद्ध और आक्रमण की भाषा शुरू हो जाती है। प्रेम कभी जीतने की भाषा में सोचता नहीं और जो प्रेम जीतने की भाषा में सोचता है वह हार जाता है, खुद भी हार जाता है। क्योंकि जब भी हम किसी को जीतने चलते हैं इसी भाव से चलते हैं। अगर मैं किसी को प्रेम करूं और यह भाव हो कि इसको जीतना है, वहीं हार शुरू हो गयी। क्योंकि वह आदमी सचेत हो जायगा और उसका अहंकार सचेत हो जायगा कि मुझे जीतने आ रहा है प्रेम। तो प्रेम केवल बहाना है, जीत असली बात है। प्रेम जीतने की भाषा को नहीं सोचता है। और फिर मैं आपको यह कहूं कि गांधी के साथ मुसलमानों ने कोई दुर्व्यवहार नहीं किया, दुर्व्यवहार हिन्दुओं ने किया, कोई मुसलमान ने नहीं किया। आप तो कहते हैं कि मुसलमानों को गांधी ने नहीं जीत पाया। असलियत यह है कि गांधी हिन्दू को नहीं जीत पाये, क्योंकि हत्या हिन्दू ने की थी और उस हत्या के पीछे न मालूम कितने हिन्दुओं का साथ और समर्थन था। गांधी बड़ी दिक्कत में पड़ गये थे क्योंकि गांधी को दो तल पर सारे विचार सम्हालने पड़े और कोई भी संत इतनी दिक्कत में पड़ जायगा अगर वह राजनीति में खड़ा हो। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि यह गांधी की ही कमजोरी थी। अगर महावीर और बुद्ध भी गांधी की ही तरह राजनीति में खड़े होते, तो गांधी से ज्यादा सफल नहीं हो सकते। इस लिहाज से गांधी की जितनी भी सफलता है वह बहुत बड़ी है। क्योंकि यह पहला ही प्रयोग था एक संत का राजनीति में होने का। इसलिए मेरी बातों से यह मतलब नहीं लेना कि मैं गांधी को कहीं नीचे रख रहा हूं।

गांधी की बड़ी ऊंचाई है क्योंकि यह पहला प्रयोग था, पहला एक्सपेरीमेंट था कि एक मनुष्य जिसके बुनियादी आधार धार्मिक हों, जिसकी चेतना की सारी प्रक्रिया साधु की हो, वह राजनीति में खड़ा है। पीछे किसी बड़े संत ने बहुत पैमाने पर वैसा प्रयोग नहीं किया है जो स्वयं राजनीति में खड़ा हो। यह जो स्थिति थी इसमें बहुत सी असुविधाएं होनी स्वाभाविक थीं लेकिन फिर भी गांधी ने बहुत बड़ी जीत हासिल की। आदमी की जिन्दगी छोटी है और उसकी छोटी जिन्दगी के पैमाने को देखते हुए उसकी जीत समझनी चाहिए। गांधी ने बहुत लोगों के हृदयों को प्रभावित किया है और हिन्दुस्तान की जो भी शक्ल बनी उनके उस प्रभाव से

बनी । अगर गांधीजी के पीछे उस तरह के लोग निरन्तर आते रहें और वह जो पहला प्रयोग है वह पहला होकर ही समाप्त न हो जाय, कहीं वह पहला और अंतिम दोनों न हो जाय, तो दो-चार सौ वर्षों में, हजार–दो हजार वर्षों में और दुनिया के इतिहास में हजार–दो हजार वर्ष कोई लम्बा समय नहीं है, अगर निरन्तर साधु जीवन के घनेपन में खड़ा होता रहे, जहां से अक्सर साधु भाग जाते हैं, वहां डटकर खड़ा होता रहे, तो दो–तीन हजार वर्षों में यह परिणाम स्पष्ट हो जायगा कि उसका प्रेम जो कि और तरह से लोगों के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है, वह वहां भी प्रविष्ट हो जाता है । हो सकता है जहां राजनीति है, जहां कि कूटनीति है वहां भी सफलताएं हो सकती हैं । और दुनिया में कोई सफलता व्यक्तिगत नहीं होती है, सिद्धांतों की होती है । आदमी आते हैं, जाते हैं, हारते हैं, गिरते हैं, जीते हैं, मरते हैं; सिद्धांत धीरे धीरे विकसित होता है । अभीतक ऐसा हुआ है कि दुनिया में जितने साधु पुरुष हैं वे सारे लोग दुष्टों के और शैतानों के समर्थक रहे हैं । समर्थक इस अर्थ में कि वह उन जगहों से भाग जाते हैं जहां कि उन्हें होना चाहिए था और वह जगह खाली रह जाती है । वहां बुरे आदमी बैठ जाते हैं । भले आदमियों ने दुनिया को नुकसान पहुंचाया कि वे बुरे आदमियों के लिए जगह खाली कर देते हैं । और दुनिया में जितना नुकसान इस बात से हुआ है, किसी और बात से नहीं हुआ है । जहां भी दिक्कत होगी भला आदमी फौरन जगह छोड़ देगा और बुरा आदमी उसकी जगह बैठ जायगा । भला आदमी जगह छोड़ देता है और पलायनवादी होता है । राजनीति बुरी चीज है तो वहां भला आदमी जाता नहीं है । इसका मतलब है कि भला आदमी बुरे आदमी को जाने का द्वार और दरवाजा दे रहा है । सारी दुनिया की राजनीति पर बुरे आदमी ऊपर जाते हैं क्योंकि भला आदमी वहां कोई जाता नहीं है । जबकि जरूरत यह है कि भला आदमी उन जगहों पर खड़ा रहे जहां कि बुरे आदमी खतरे पैदा कर सकते हैं ।

अगर दुनिया में हाईड्रोजन बम हो, एटम बम हो लेकिन गांधी जैसे राजनीतिज्ञ हों तो कोई खतरा नहीं है, दुनिया को कोई नुकसान नहीं होगा । अगर भले आदमियों के हाथ में ताकत हो तो इससे शुभ और कोई बात नहीं होती और बुरे आदमियों के हाथ में ताकत हो जाय तो उससे अशुभ कोई बात नहीं होती । तो मेरी इन बातों को समझना । अब इसमें विस्तार से नहीं जा सकूंगा हालांकि जाना जरूरी है क्योंकि मेरे सारे विचार भिन्न, चलती हुई धारा से इतने भिन्न होते हैं कि उन्हें थोड़े में समझाना कठिन पड़ जाता है, या समझा तो कम पाता हूं, गड़बड़ ज्यादा कर देता हूं । अंडरस्टैंडिंग तो कम पैदा करवाता हूं, मिसअंडरस्टैंडिंग

ज्यादा पैदा हो जाती है। तो, गांधी पर जो मैंने कहा है तो उसपर से ख्याल मत बना लेना। अगर गांधी पर ख्याल लेना ही है, तो मैं दो-चार दिन इकट्ठा गांधी पर ही विचार करूं तो ही कोई ख्याल आ सकता है, नहीं तो नहीं आ सकता है।

प्रश्न : नास्तिकता और आस्तिकता सबको छोड़कर आपने कहा है कि सत्य की जिज्ञासा करनी चाहिए ? यह तो ठीक है। लेकिन सब धारणाओं को छोड़कर हम कैसे पहचानेंगे कि जो है, वह सत्य है ?

उत्तर : हमारी धारणा यह है कि हमें पहले से पता हो तभी हम पहचानेंगे नहीं तो हम पहचानेंगे कैसे ? जबकि असलियत यह है कि अगर पहले से पता हो तो पहचान ही नहीं सकेंगे, क्योंकि जो पहले से पता है वह समझ लेंगे कि वही है। अगर मुझसे मिलने के पहले किसी ने कह दिया कि मैं बुरा आदमी हूं या किसी ने कह दिया कि मैं बहुत भला आदमी हूं, फिर आप मुझसे मिलने आयें तो मुझसे कम मिलेंगे और आपकी धारणा बीच में आ जायगी और उससे ही ज्यादा मिलेंगे। जो धारणा आप मेरे पास लेकर आयेंगे मुझसे कम मिल पायेंगे, आपकी इस धारणा से आप ज्यादा मिल पायेंगे। क्योंकि वह बीच में ही खड़ी रहेगी और आप मेरे पूरे व्यक्तित्व को नहीं देखेंगे और उसमें से कुछ चुनाव कर लेंगे जो आपकी धारणा के पक्ष में पड़ती है। तो यह हो सकता है कि जो आदमी मुझे बुरा समझकर आये वह निर्णय लेकर जाये कि बुरे आदमी हैं और जो भला समझकर आये वह निर्णय लेकर जाये कि भले आदमी हैं। क्योंकि ऐसा एक ही आदमी कई लोगों को बुरा दिखायी पड़ता है और कई लोगों को भला दिखाई पड़ता है। क्यों ? क्योंकि जो हमारी धारणा होती है वह हम पूरी कर लेते हैं।

खतरनाक धारणा

सत्य के सम्बन्ध में अगर कोई धारणा आपने बना ली तो बड़ा खतरा हो जायगा, क्योंकि फिर आप सत्य जैसा है वैसा नहीं देख सकेंगे। जैसा देखना चाहते हैं वैसा देखेंगे। और दुनिया में ये भूलें रोज होती हैं। एक आदमी कृष्ण की मूर्ति की पूजा करता है और सोचता है यही भगवान हैं। निरन्तर विचार करने से, सोते जागते निरन्तर धारणा करने से उसके अचेतन चित्त (Unconscious Mind) में कृष्ण की मूर्ति प्रविष्ट हो जाती है। धीरे धीरे उसी पर सोचने से उसके संकल्प के द्वारा वह कृष्ण की मूर्ति को बड़ा सजीव कर लेता है। फिर जब उसका चित्त शान्त होता है तो सब तो शान्त हो जाता है, वह मूर्ति प्रकट होकर सामने खड़ी हो जाती है क्योंकि उसने उस मूर्ति को पाला है, पोसा है। उसको उसने निरन्तर अपने अचेतन में इकट्ठा किया

है, संजोया है, उसको सींचा है और संवारा है और बड़ा किया है। तो जब सब विचार शान्त हो जाते हैं, तब कृष्ण की मूर्ति बांसुरी बजाती दिखायी पड़ने लग जाती है। तो अगर कृष्ण भगवान हैं तो किसी क्रिश्चियन को उनके दर्शन क्यों नहीं होते ? क्योंकि जो धारणा आप अपने भीतर प्रविष्ट कर लेते हैं, उसी के दर्शन कर लेते हैं। यह आत्मसम्मोहन (Self Hypnosis) से ज्यादा और कुछ भी नहीं है। इसलिए दुनिया में जिसको जैसा मन आये, जिसकी जैसी मौज आये वैसी धारणा कर सकता है और धीरे धीरे उसी का साक्षात्कार कर लेता है। वह एक आत्मवंचना (Self Delusion) में पड़ गया है।

अगर सत्य का साक्षात्कार करना है तो आप कौन हैं धारणा बनाने वाले और यह छोटी सी बुद्धि उस परमात्मा की धारणा कैसे बनायेगी और इसकी सब धारणा छोटी होगी और उसपर उन परमात्मा को कैसे प्रकट कर सकेगी। बुद्धि की धारणाओं से नहीं, बुद्धि की सब धारणाओं को छोड़ देने पर जो अनुभव होता है, वह अनुभव सत्य का है। वह अनुभव परम्परा का और सम्प्रदाय का नहीं है, वह किसी धारणा का नहीं है। कोई विचार, कोई धारणा (Concept) आपकी ही बनायी हुई है, और आप तो अज्ञान में बना रहे हैं उसको, अज्ञान को अपने साथ लिए जायेंगे, परमात्मा को कैसे जान सकेंगे ? आपको अपना सब कुछ छोड़ देना होगा परमात्मा को जानने के लिए। आपको निपट, खाली और शून्य होकर खड़ा होना होगा, आपको बिल्कुल खाली होकर खड़ा होना होगा। सिर्फ देखना भर रह जाय और कुछ न हो। कोई धारणा न हो और कोई ख्याल न हो। तब आपको जो ज्ञात होगा—वह न तो क्राइस्ट होंगे, न कृष्ण होंगे, न राम होंगे, न बुद्ध होंगे, न महावीर होंगे। यह तो व्यक्तियों के नाम हैं जिनको हमने बहुत प्रेम किया और जो प्रेम करने के योग्य थे और जिन्होने सत्य को जाना था; लेकिन उनके शरीर और उनकी रूप-रेखायें सत्य नहीं हैं। उनकी देह, ख्याल तो कीजिये, जिन देहों की हम मूर्तियां बनाकर पूज रहे हैं वे राख में मिल गयी हैं और कब्रों में पड़ी हुई हैं। जिनकी असली देह भी कब्र में चली गयी और राख में मिल गयी, उनकी हम थोथी मूर्तियां बनाकर पूजते हैं। हम क्या समझते हैं कि कुछ हो जायगा ? उनके भीतर जो था, जो कि देह नहीं था, वह सत्य है, लेकिन उसकी कोई रूपरेखा नहीं है। वह आपके भीतर भी है, लेकिन उसकी भी कोई रूपरेखा नहीं है। इसलिए सत्य को पाने के लिए कोई धारणा, कोई मूर्ति, कोई कल्पना, कोई आकार, कोई रूप सब बाधा है। सब छोड़कर जो एकदम मौन (Silent) हो जाता है, उस मौन जाग्रति (Silent Awareness) में जो दिखायी पड़ता है वह सत्य है।

प्रश्न : **कुछ तो थोड़ा-बहुत सहारा बचने दीजिए--कोई मूर्ति, कोई मंदिर ताकि सीढ़ियों की तरह हम इससे परमात्मा तक पहुंचते रहें ?**

उत्तर : सवाल यह है कि परमात्मा को क्या आप समझते हैं कि कोई सीढ़ियों से उस तक पहुंच सकता है । परमात्मा तक कोई सीढ़ी नहीं जाती । वह कोई चीज थोड़े है कि आपने सीढ़ी लगाई और आप चढ़ गये । परमात्मा आपके भीतर है, सीढ़ी कहां लगाइयेगा ? परमात्मा आप हैं, सीढ़ी कहां लगाइयेगा ? जाइयेगा कहां खोजने ? यह धारणा ही गलत है कि हम परमात्मा को खोजने जा रहे हैं, कोई रास्ता तय करना है । रास्ता उन चीजों के बीच में होता है जो हमसे दूर हैं । जो हमारे प्राणों का प्राण है, उस तक रास्ता कैसे होगा ? रास्ता तो दो बिन्दु जो दूर हों उनके बीच होता है । परमात्मा और आपके बिन्दु में कोई दूरी नहीं । एक ही बिन्दु के दो नाम हैं । रास्ता कैसे होगा, सीढ़ी कैसे होगी, चलना कैसे होगा ? इसलिए समझ लीजिये, चलकर कोई परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता है, रुककर पहुंचता है । सीढ़ी लगाकर नहीं, सीढ़ी छोड़कर पहुंचता है । यात्रा करके नहीं, यात्रा छोड़कर पहुंचता है । भाग कर नहीं, ठहर कर, क्योंकि जो मेरे भीतर है उसे भागकर कैसे पाऊंगा ! ठहर जाऊंगा तो पा लूंगा । उसे दौड़कर कैसे पहुंचूंगा, हां, रुक जाऊंगा तो पा लूंगा । परमात्मा के सम्बन्ध में यह ख्याल कि कोई रास्ता होता है, कोई सीढ़ी होती है, फलां होता है, ढिकां होता है, यह सब बातचीत है । परमात्मा के लिए तो ठहरना होता है, छोड़ना होता है, भाग बन्द कर देनी होती है । अगर इसी वक्त आप राजी हो जायें कि मैं वहीं खड़ा रहूंगा जहां मैं हूं, बात खत्म हो गयी । आप पहुंच गये जहां पहुंचना था । आप भाग रहे हैं, यही आपकी दिक्कत है । यों समझिये कि जो भाग रहा है और जा रहा है वह न पहुंचने का उपाय कर रहा है । जो जितना जायगा उतना ही दूर जायगा ।

लाओत्से ने एक बहुत अद्‌भुत वचन कहा है । उसने कहा है--खोजो और खो दोगे । उसने कहा है खोजो और खो दोगे । ठहर जाओ, पा लोगे । ठीक कही है बात । एकदम ठीक कही है । तो यह कोई सीढ़ियां नहीं हैं जिनको आप समझ रहे हैं कि मन्दिर जा रहे हैं तो भगवान की सीढ़ियां पार कर रहे हैं । यह मनुष्यों द्वारा बनाये हुए मकानों की सीढ़ियां हैं । और आप सोच रहे हैं कि कोई मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं तो कोई सीढ़ी पार कर रहे हैं । इतना सस्ता मामला नहीं है कि आपने कुछ रुपये खर्च करके मूर्ति खड़ी कर ली और हाथ जोड़े खड़े हुए हैं--जैसे बच्चे गुड्डे-गुड्डियों से खेलते हैं वैसे बड़े लोग मूर्तियों से खेलते हैं । लेकिन खेल गुड्डा--गुड्डियों से ज्यादा नहीं है, बचकाना ही है । बच्चों पर आप हंसते

हैं और अपने पर आप हंस नहीं पाते और बड़े गुड्डे-गुड्डियाँ बनाये हुए हैं और उनको हाथ जोड़े खड़े हुए हैं। छोटे बच्चे उनके शादी-विवाह करते हैं तो आप उन पर हंसते हैं और आप करते हैं तो उसको समझते हैं कि धार्मिक काम हो रहा है। यह सब चाइल्डिश है, अत्यन्त अप्रौढ़ और बचकानी बातें हैं, और इनसे कोई कहीं पहुंचता नहीं।

★

प्रश्न : **फिर सामान्य आदमी क्या करे ?**

उत्तर : मैं किसी आदमी को सामान्य नहीं मानता हूं। जिसके भीतर परमात्मा बैठा है उसे सामान्य मानकर क्या अपमान करूंगा ? कोई आदमी सामान्य नहीं है। सारा भेद वस्त्रों में है। भीतर जो बैठा है उसमें कोई भेद नहीं।

★

प्रश्न : **क्या किसी को गुरु बनाना चाहिए ?**

उत्तर : जो गुरु बनने को राजी हो जाये उसमें गुरु की योग्यता नहीं है। गुरु की एक ही योग्यता है, एक ही समझ है कि वह यह पहचान ले कि दूसरे के भीतर जो बैठा है वह वही है जो मेरे भीतर बैठा है, तो उसका गुरु बनकर परमात्मा का अपमान कैसे करेंगे ? यह सब अहंकार है कि कोई किसी का गुरु बनना चाहे। और दुनिया में अहंकारियों ने, जिन्हें गुरु बनने का अत्यन्त रस है, दुनिया को बड़ी दिक्कत और कठिनाई में डाल दिया। दुनिया में धर्मों में कोई भेद नहीं होता, अगर ये गुरु कृपा करते, तो दुनिया में कोई सम्प्रदाय नहीं होता। लेकिन गुरुओं को एक ही मजा है कि कितनी भेड़ें उनके पीछे हैं, भेड़ों की संख्या से उनका रस है, इसलिए वे भेड़ों को बढ़ाते हैं और लोगों को समझाते हैं कि गुरु बनाना बहुत जरूरी है। बिना गुरु के भगवान नहीं पाओगे। जैसे भगवान को भी इस जगत में दलालों की, मध्यस्थों की और निजी ट्रस्टी की कोई जरूरत है। वह यह कहते हैं कि जब हम पहुंचायेंगे तब आप पहुंच सकते हैं, नहीं तो आप पहुंच ही नहीं सकते, बिना गुरु के तो ज्ञान हो ही नहीं सकता। जबकि ज्ञान हर एक के भीतर बैठा हुआ है और गुरु सिवाय परमात्मा के और कोई नहीं है।

तो मैं नहीं कहता कि किसी को गुरु बनाएं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कहता हूं कि आप शिष्य न हों। इसे थोड़ा समझ लें आप। किसी को गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं, लेकिन आपको शिष्य होना चाहिए किसी का—यह चारों तरफ परमात्मा व्याप्त है उसका। पत्तों से सीखिये, पहाड़ों से सीखिये

झरनों से सीखिये, मनुष्य की आंखों से सीखिये, उनके कानों से सीखिये, अपने चारों तरफ जागिये और आपको वह सारे संदेश मिलने शुरू हो जायेंगे जो परमात्मा दे रहा है। और कब तक आप मनुष्य के संदेश में उलझे रहेंगे ! कितना हास्यजनक है एक आदमी बैठकर कुरान पढ़ रहा है, एक आदमी बाइबिल पढ़ रहा है, एक आदमी गीता पढ़ रहा है और परमात्मा चारों तरफ बोल रहा है किंतु उसकी तरफ कान बन्द किये हुए हैं और परमात्मा भीतर निरन्तर धड़क रहा है, उसके पीछे कोई ख्याल नहीं है। वह अपनी किताब पढ़ने में लगा हुआ है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे : एक दफा ईरान में ऐसा हुआ कि एक प्रेमी बहुत दूर था अपनी प्रेयसी से। एक दिन उसने प्रेयसी को बड़ा लम्बा पत्र लिखा। लिखे जा रहा था, लिखे जा रहा था। कोई घंटे–डेढ़ घंटे में उसने जब पत्र पूरा किया और आंख ऊपर उठायी तो देखकर दंग रह गया ! प्रेयसी सामने बैठी थी। वह बड़ी देर से आयी थी। लेकिन वह पत्र लिख रहा था इसलिए वह सामने बैठी थी चुपचाप, कि जब पत्र पूरा हो जाय तब वह उससे बोले। वह पत्र लिखता रहा और जो पत्र प्रेयसी को लिखा जा रहा था वही लिखा पत्र बाधा हो जायेगा। परमात्मा के नाम से लिखी गयी किताबें ऐसे ही पत्र हो जाते हैं। उनको पढ़ने आप बैठे हैं और परमात्मा सामने बैठा हुआ है। छोड़िये उसको, उसको देखिये जो है। शिष्य तो बनिये लेकिन गुरु मत बनिये और न गुरु बनाइये। शिष्य का मतलब है एप्टीट्यूड, एक डिसाइपुलशिप का, सीखने का लर्निंग का। मैं सीखना चाहता हूं, तो सीखना क्या एक ही आदमी से चाहते हैं। इतनी बड़ी दुनिया है, सबसे सीखिये। आंख बन्द क्यों करते हैं, आंख खोलिये।

मेरे पास कोई आता है और कहता है कि मैं आपको गुरु बनाना चाहता हूं तो मैं कहता हूं कि क्षमा करो, ऐसी भूल तो मैं कर भी नहीं सकता और तुम्हें भी नहीं करने दूंगा। हां, शिष्य बनो और चारों तरफ आंख खोलो और जहां से सीखना तुम्हें मिल जाये वहां से सीखो। लेकिन गुरु यह सिखाता है कि जो हमसे सीखो वह किसी को बताना मत और किसी और से भूलकर सीखना मत। सीक्रेट है। यह जो मैंने तुम्हारा कान फूंका है यह किसी को और मत बताना और किसी और से कुछ सीखना मत, किसी और के मन्दिर में मत जाना, किसी और के प्रवचन में मत जाना, किसी और का साथ मत करना। द्रोह हो जायेगा।

हद हो गई। एक आदमी यह दावा करता है कि तुम सारे संसार से सीखना छोड़ देना और सिर्फ मुझसे सीखना। इस आदमी की क्षुद्रता और नासमझी का हिसाब नहीं। मैं कहता हूं सीखो और आंख खोलकर चारों तरफ देखो। जहां से

मिल जाये वहां से सीख लो, क्योंकि जहां से भी सीख रहे हो वहीं से परमात्मा से ही सीख रहे हो। सब तरफ से उसी की खबर है। सब तरफ से उसी का गीत है। सब तरफ से उसी की ध्वनि है। लेकिन यह बातें थोड़ी सोचना। एकदम से मेरी बात पर निर्णय मत लेना कि ठीक है, कि गलत है। थोड़ा सोचना है। ठीक-गलत की कोई फिक्र ही मत करना। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि आप ठीक सोचो तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि आपकी संख्या मेरे पीछे बढ़ेगी नहीं। मैं बिल्कुल अकेला हूं। आप गलत सोचो, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि कोई संख्या घटेगी नहीं। क्योंकि मैं बिल्कुल अकेला हूं। इसलिए आप ठीक और गलत सोचने की जल्दी में मत पड़ना। उसे सोचना कि क्या कहा है? इसपर थोड़ा विचार करें। ठीक और गलत जल्दी जो सोच लेता है वह विचार नहीं कर पाता। निर्णय जल्दी ले लेना अज्ञानी का लक्षण है। थोड़ा सोचकर धीरज से कि जो कहा है उसका क्या अर्थ हो सकता है? गलत है या सही, जल्दी से ऐसा जो सोच लेता है वह नासमझ है। एकदम नासमझ है। फिर मेरे मामले में कोई दिक्कत ही नहीं है। आप कुछ भी सोचें तो वह बातें ठीक ही होंगी। इसलिए बहुत धीरज से सही-गलत बातों को एक तरफ रखकर थोड़ा विचारना है। शायद वह विचार आपके भीतर जग जाये। आपको कुछ दिखाई पड़ने लगे।

★

जीवन जब स्व विवेक के प्रकाश में गति करता है तो अराजकता और स्वच्छंदता की संभावनायें ही समाप्त हो जाती हैं।

समाचार विभाग :

धर्म चक्र प्रवर्त्तन :

आचार्यश्री के देश-व्यापी कार्यक्रम :

"देखो, जीवन के रहस्य को देखो। क्योंकि रहस्यानुभूति में ही छिपा है : धर्म। रहस्य में ही छिपा है : प्रभु। रहस्य में ही छिपा है : सत्य।"

माथेरान में साधना शिविर :

२०, २१, २२ एवं २३ मार्च को माथेरान में पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य में साधना शिविर आयोजित हुआ। शिविर में देश के कोने-कोने से बहुत बड़ी संख्या में प्रेमी साधकों ने भाग लिया। आचार्यश्री के सान्निध्य में यहाँ पर प्रतिदिन सुबह का ध्यान, मध्यान्ह मौन का प्रयोग तथा रात्रि प्रश्नोत्तर तथा ध्यान के प्रयोग नियमित तीन दिवसों तक चले। इन प्रयोगों ने तथा आचार्यश्री के सान्निध्य ने शिविरार्थियों पर जीवन के आंतरिक मूल्यों की गरिमा को स्पष्ट किया। अपने प्रवचनों में आचार्यश्री ने कहा : "मित्रो ! मैं जागकर जीवन को देखने के लिए निवेदन करने आया हूँ। जागकर देखो—स्वयं में और स्वयं के बाहर भी। तो तुम पाओगे कि एक अनूठा रहस्य जगत् तुम्हें घेरे हुये है। इसी रहस्य में प्रवेश धर्म है। धर्म शास्त्रों में नहीं है। धर्म है जीवन के रहस्यानुभव में। इसीलिये उधार ज्ञान को छोड़ो और सरलता से जीवन को देखो। वह दर्शन तुम्हें उस ज्ञान पर ले जायेगा जोकि जीवन को सब बंधनों से मुक्त कर देता है।"

"धर्म है सनातन नित नवीन । सनातन धर्म जैसा कोई धर्म नहीं ।"

पटना विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन में उद्घोष :

पटना में २९,३० मार्च एवं १ अप्रैल को द्वितीय विश्व हिंदू धर्म सम्मेलन का विशाल आयोजन हुआ । इस सम्मेलन में पूज्य आचार्यश्री की मौलिक प्रतिभा ने जन-जन के हृदय में अपना स्थान बना लिया। चारों ओर आचार्यश्री की वाणी का जोर-दार स्वागत हुआ। युवावर्ग आचार्यश्री की वैज्ञानिक धार्मिक जीवन-दृष्टि से अत्यंत प्रभावित हुआ । यही कारण था कि पुरी के शंकराचार्य ने जब विवाद की स्थिति उत्पन्न की तो उन्हें घोर निराशा का सामना करना पड़ा और उनका बोलना भी नहीं हो सका। आचार्यश्री को यहाँ अत्यंत व्यापक समर्थन मिला और विश्व धर्म सम्मेलन के आचार्यश्री प्रधान आकर्षण के केंद्र रहे । आचार्यश्री के जीवन-दर्शन को समझने की अति तीव्र जिज्ञासा यहाँ पर रही । आचार्यश्री ने यहाँ कहा : "धर्म तो नित नवीन है, और इसलिए धर्म सनातन है । लेकिन सनातन धर्म जैसा कोई धर्म नहीं हो सकता। धर्म तो मात्र जीवन की आंतरिक अनुभूति है, और उसका बाह्य विशेषणों से कोई संबंध नहीं है । धर्म है जीवन को जीने की कला और इसी से कोई व्यक्ति धार्मिक तो हो सकता है, लेकिन किसी धर्म का नहीं ।"

★

"मनुष्य जो खोजता है वही हो जाता है । उसकी खोज, उसकी आकांक्षा, उसकी प्यास ही अंततः उसकी प्राप्ति बन जाती है । क्षुद्र को जो खोजता है वह क्षुद्र हो जाता है, और जो विराट् को खोजता है वह विराट् हो जाता है ।"

अमृतसर में त्रिदिवसीय विराट् सत्संग :

१२, १३ एवं १४ अप्रैल को पूज्य आचार्यश्री के सत्संग का लाभ अमृतसर के प्रेमी-प्रबुद्ध नागरिकों ने उठाया । आचार्यश्री की अंतःवाणी को सुनने प्रतिदिन कोई १० से १५ हजार तक नागरिकगण उपस्थित होते । आचार्यश्री ने यहाँ कहा : "भिखारी बनना है या सम्राट ? भिखारी बनना हो तो क्षुद्र की खोज करो और सम्राट बनना हो तो विराट् की । क्योंकि क्षुद्र की खोज में खोजनेवाला भी क्षुद्र हो जाता है और विराट् की खोज में विराट् । मनुष्य जो खोजता है, वही हो जाता है ।"

★

"परमात्मा के द्वार को खोल लेना अत्यंत सरल है । शर्त एक ही है : क्या आपके पास शांति की कुंजी है ?"

इन्डियन मेडिकल एसोसिएशन दिल्ली में :

१५ अप्रैल को आचार्यश्री दिल्ली पधारे । यहाँ पर इन्डियन मेडिकल एसोसिएशन की बैठक में आचार्यश्री ने उद्‌बोधन किया । अपने उद्‌बोधन प्रवचन में आचार्यश्री ने कहा : "परमात्मा के द्वार को खोल लेना अत्यंत सरल है । लेकिन ठीक कुंजी न हो तो सब कठिन हो जाता है । और कुंजी कहाँ है ? कुंजी है प्रत्येक व्यक्ति स्वयं । अशांत व्यक्ति ठीक कुंजी नहीं है । शांत व्यक्ति ठीक कुंजी है । शांति की कुंजी से ही सत्य के द्वार पर लगा ताला खुलता है ।"

★

"धर्म अंतस् जीवन की क्रांति है, बाह्य बदलाहट नहीं ।"

पूना में विशाल सत्संग :

४, ५ एवं ६ मई को पूना में विशाल सत्संग का आयोजन पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य में हुआ । पूना में आचार्यश्री की वाणी का लाभ निरंतर अनेक वर्षों से वहाँ के प्रबुद्ध नागरिक ले रहे हैं । जन-मानस आचार्यश्री को सुनने-समझने को तीव्र आतुर हो उठा है-- क्योंकि आचार्यश्री जीवन के सत्यों को वैज्ञानिक आधार दे रहे हैं । यहाँ पर आचार्यश्री ने कहा : "जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों को बाहर से नहीं चिपकाया जा सकता है । वह एक प्रवंचना है । श्रेष्ठ मूल्य तो जब कोई व्यक्ति भीतर चेतना के जगत में प्रवेश करता है तो सहज ही फलित होते हैं । धर्म अंतस् जीवन क्रांति है, बाह्य बदलाहट नहीं ।"

★

"जीवन का संगीत है संतुलन में । अतिवाद पीड़ा है, तनाव है । न शरीर न आत्मा, न विज्ञान न धर्म .... वरन् जीवन की समग्रता और पूर्णता ही एक संस्कृति निर्मित करती है ।"

इन्दौर में तेजस्वी प्रवचन :

१९, २० एवं २१ मई को आचार्यश्री इंदौर पधारे । इन्दौर में बहुत वृहद् स्तर पर पूज्य आचार्यश्री के कार्यक्रम आयोजित हुए । हजारों प्रबुद्ध युवा एवं वृद्धों ने आचार्यश्री की अत्यंत सुलझी हुई जीवन दृष्टि को सुना । यहाँ पर आचार्यश्री ने कहा : "धर्म भी अकेला अधूरा है और विज्ञान भी । शरीर और आत्मा के अद्‌भुत मिलन और संतुलन में जैसे मनुष्य का जीवन है, ऐसे ही धर्म और विज्ञान के संतुलन

से ही मनुष्य की संस्कृति का जन्म हो सकता है । अबतक की सारी सभ्यतायें और संस्कृतियाँ अधूरी थीं । इससे ही उनसे मनुष्य का कल्याण भी नहीं हुआ । या तो वे शरीरवादी थीं, या आत्मवादी । लेकिन ये दोनों अतियाँ हैं । और अति एक तनाव है । वह एक रोग है । वह एक पीड़ा है । जीवन का संगीत तो सदा संतुलन में है । मध्य में है । अति में नहीं । अब अति में है । भविष्य में एक ऐसी ही पूर्ण सस्कृति को जन्म देना है । वह पूर्ण संस्कृति ही मनुष्यता को दुखों और पीड़ाओं के ऊपर उठा सकती है ।"

★

"धर्म की ओर पहला कदम क्या है ? मानसिक गुलामी की जंजीरों को तोड़ डालना । श्रद्धाओं, विश्वासों और अंधी मान्यताओं से मुक्त हो जाना ही धर्म की ओर पहला कदम है ।"

बम्बई में विराट् सत्संग :

दिनांक ३०, ३१ मई तथा १ एवं २ जून को पूज्य आचार्यश्री बंबई पधारे । यहाँ पर क्रास-मैदान में विराट् सत्संग का आयोजन हुआ । कोई २० हजार व्यक्तियों ने सत्संग में भाग लिया । उन्होंने यहाँ कहा : "धर्म का श्रद्धा और विश्वास से संबंध अत्यंत घातक सिद्ध हुआ है । उसके कारण ही धर्म अंधविश्वास बन सका है और हजारों वर्षों से मनुष्य को अंधकार में रहना पड़ रहा है । विश्वास मानसिक अंधेपन और गुलामी का ही दूसरा नाम है । और मानसिक रूप से गुलाम चेतना कैसे मुक्त हो सकती है? . . . . कैसे आनंद पा सकती है?. . . कैसे आलोक को उपलब्ध हो सकती है ? इसलिए मेरी दृष्टि में तो व्यक्ति की चेतना में धार्मिक क्रांति की शुरुआत अंधविश्वासों के सारे जाल को तोड़ देने से ही शुरू होती है । धर्म की ओर वही पहला कदम है ।"

★

"बाहर है मृत्यु लेकिन भीतर--- भीतर कोई मृत्यु नहीं है । वहाँ तो जीवनों का जीवन विराजमान है । लेकिन जो खोजता है, वही उसे पाता है ।"

उदयपुर में साधना शिविर :

३, ४, ५ एवं ६ जून को उदयपुर में आचार्यश्री के सान्निध्य में एक साधना शिविर आयोजित किया गया । शिविर में सारे देश से जिज्ञासु साधक उपस्थित हुए थे । यहाँ पर आचार्यश्री ने कहा : "वह जो अत्यंत निकट है, उसे हम दूर की खोज

में खो देते हैं। वह जो हमारे भीतर ही है, उसे हम बाहर की दौड़ में खो देते हैं। ऐसे जीवन रिक्त होता है और मृत्यु निकट आती है। मैं पूछना चाहता हूँ कि इस तथाकथित जीवन में हम मृत्यु के अतिरिक्त और क्या उपलब्ध कर पाते हैं ? क्या यह बहुत अजीब सी बात नहीं कि जीवन की खोज और दौड़ से अंततः मृत्यु हाथ में आती है ? होना तो उल्टा ही चाहिए। होना तो चाहिए कि जीवन अमृतत्व को उपलब्ध हो, तो ही हम उसे सफल भी कह सकते हैं। लेकिन निराश होने का कोई कारण नहीं है, जीवन अमृतत्व को उपलब्ध हो सकता है। काश ! हम स्वयं की गहराइयों में उसे खोजें तो वह तो अमृत है ही। बाहर है मृत्यु, लेकिन भीतर कोई मृत्यु नहीं है।"

★

"संदेह — सम्यक और जीवन्त संदेह ही निसंदिग्ध ज्ञान तक ले जाने वाला सेतु है। विश्वासी चित्त तो चलता ही नहीं, उसको कहीं पहुँचने का तो सवाल ही नहीं है।"

अहमदाबाद में त्रिदिवसीय सत्संग :

८, ९ एवं १० जून को आचार्यश्री के सान्निध्य में एक विशाल सत्संग का आयोजन हुआ। यहाँ पर आचार्यश्री ने कहा : "मैं श्रद्धा नहीं, संदेह सिखाता हूँ। क्योंकि श्रद्धा जड़ता लाती है और संदेह खोज में ले जाता है। संदेह अत्यंत जीवन्त प्रक्रिया है। इससे गुजर कर कोई निसंदिग्ध ज्ञान तक भी पहुँच सकता है। लेकिन, विश्वास करने वाला चित्तयात्रा ही नहीं करता है। उसके कहीं पहुँचने का तो सवाल ही नहीं है।"

★

"बाहर और भीतर का जीवन सत्य है—इस धारणा के विकास से राष्ट्रीय एकता संभव।"

जबलपुर में उद्बोधन :

जबलपुर नगर में पूज्य आचार्यश्री के सान्निध्य में १५ एवं १६ जून को एक विशाल सत्संग शहीद स्मारक भवन में आयोजित हुआ। आचार्यश्री ने यहाँ कहा : "भारत में एक राष्ट्र की भावना विकसित नहीं हुई। इसका कारण है कि भारत ने बाह्य जीवन को माया कहा। जो राष्ट्र बाह्य जीवन को स्वीकार नहीं करता वह भौतिक रूप से दरिद्र हो जाता है और राष्ट्र के विकास की संभावनायें नष्ट हो जाती हैं। बाहर का जीवन भी सत्य है और भीतर का जीवन भी सत्य है, जब तक यह धारणा विकसित नहीं होती, तबतक कोई राष्ट्र खड़ा नहीं हो सकता। क्योंकि बाह्य संबंधों के आधार पर ही राष्ट्रीयता विकसित होती है।" ● ●

आचार्यश्री रजनीश के आगामी देश-व्यापी कार्यक्रम :

दिनांक :	स्थान :	कार्यक्रम :	संयोजक :
११, १२ एवं १३ सितंबर	पूना	सत्संग	श्री माणिक लाल बाफना. जीवन-जागृति केंद्र, स्पार्टन लग्झुरी–सी–१, २४७/१४ बी., यरोडा, **पूना–६** फोन : २४११४.
१४ एवं १५ सितंबर	बंबई.	प्रवचन	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केंद्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, दादाभाई नौरोजी रोड, **बंबई–१**। फोन : २६४५३०
१६ सितंबर	दिल्ली	प्रवचन	श्री लाला सुंदरलाल, जीवन जागृति केंद्र, ४१, यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, **दिल्ली –६**। फोन: २२७६५५.
१७ सितंबर से ३० सितंबर तक	श्रीनगर (काश्मीर प्रवास)	प्रवास–यात्रा	श्री लाला सुंदर लाल, जीवन जागृति केंद्र, ४१, यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, **दिल्ली–६**। फोन २२७६५५.
१ अक्टूबर से ५ अक्टूबर तक	मनाली	" "	" "
८ अक्टूबर	जबलपुर.	प्रवचन	रोटरी क्लब, **जबलपुर**।

१४, १५, १६ एवं १७ अक्टूबर	जालन्धर	सत्संग	श्री ओमप्रकाश अग्रवाल, जीवन जागृति केंद्र, एन. के. १७५, चरण जीतपुरा, **जालंधर**। फोन : २६१०
२८, २९, ३० एवं ३१ अक्टूबर	द्वारका (गुजरात)	साधना शिविर	श्री पुष्कर भाई गोकाणी, जीवन जागृति केंद्र, जवाहर रोड, **द्वारका** (गुज.)।
११, १२, १३ एवं १४ नवंबर	सुरेंद्रनगर	सत्संग.	श्री अनूपचंद एम. शाह, जीवन जागृति केंद्र, दुधरेज लेवेल क्रासिंग के पास, **सुरेंद्रनगर** (गुज.)।
२४, २५, २६, २७, २८ एवं २९ नवंबर	बंबई	सत्संग	श्री ईश्वर बाबू, जीवन जागृति केंद्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. दादाभाई नौरोजी रोड, **बंबई–१**. फोन: २६४५३०.
९, १०, ११, १२ एवं १३ दिसंबर	जूनागढ़	साधना शिविर	श्री. एम. पी. तन्ना, जीवन जागृति केंद्र, लिबर्टी टाकीज, **जूनागढ़**।
२३, २४, २५ एवं २६ दिसंबर	अहमदाबाद.	सत्संग	श्री जे. एम. ठाकर, जीवन जागृति केंद्र, डायकेम कॉरपो., खादिया चार रास्ता, **अहमदाबाद–१**। फोन : २४०८३.

जीवन जागृति केन्द्र, बंबई द्वारा प्रकाशित आचार्य श्री रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	३–००
क्रांतिबीज	३–००
सिंहनाद	१–५०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–४०
मिट्टी के दिये	३–००
पथ के प्रदीप	४–५०
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०–४०
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–४०
सूर्य की ओर उड़ान	१–००
प्रेम के पंख	०–७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
अज्ञात की ओर	१–००
नये संकेत	१–७५
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
क्रांति के बीच सबसे बडी दीवार?	०–३०
न आंखों ने देखा न कानों ने सुना	०–१५
क्रांति की नई दिशा नई बात	०–३०
ज्योतिशिखा वार्षिक चंदा (त्रैमासिक संकलन)	५–००

मराठी साहित्य	
साधनापथ	३–००
सिंहनाद	२–००
अहिंसादर्शन	०–५०
अमृतकण	०–५०
क्रांतिबीज	२–५०
प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	२–००
स्पेशल प्रति	३–००
क्रांतिबीज (भाषा हिन्दी)	२–५०
सिंहनाद	१–२५
अमृतकण	०–५०
अहिंसादर्शन	०–५०
माटी ना दिवा	३–००
पंथ ना प्रदीप	३–००
हुं कोण छुं	२–००
केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा	०–७५
सूर्य तरफनुं उड्डयन	१–००
सत्य ना अज्ञात सागर नुं आमंत्रण	१–५०
अज्ञात प्रति	२–००
नवा संकेत	१–७५

अंग्रेजी साहित्य	
पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन	२–२५
हू ऐम आई	३–००
फिलोसाफी आफ नान–वायोलेन्स	०–८०
अर्दन लैप्स	४–५०
सीडस् ऑफ रेव्होलुशनरी थॉटस्	४–५०
विग्स् ऑफ लव्ह अॅन्ड रंडम थॉटस्	३–५०

पुस्तकें मिलने का पता :

जीवन जागृति केन्द्र,

एम्पायर बिल्डिंग, कमरा नं. ५३, १ ला मंजला, डॉ. डी. एन. रोड, फोर्ट बम्बई-१.

मुद्रक प्रकाशक : श्री पी. एल. महेश्वरी, जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड फोर्ट, बम्बई–१ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १ ।

द्वारका (सौराष्ट्र) में आध्यात्मिक शिविर

आचार्य श्री रजनीश के सान्निध्य में ता. २८–२९–३०–३१ अक्टूबर ६९

विषय : "मृत्यु पर विजय"

शिविर स्थल : श्री लोहाणा कन्या छात्रालय, द्वारका

पत्रव्यवहार का पता : श्री पुष्कर भाई गोकाणी, जवाहर रोड, द्वारका (सौराष्ट्र)

हजारों मुमुक्षु साधकों ने शिविरों में भाग लेकर जीवन जीने की दिशा में एक नया मार्गदर्शन पाया है। यह शिबिर समुद्र के किनारे अपने ढंग का अद्वितीय होगा। आप मित्रों और परिवारसहित अवश्य पधारें।

आचार्य श्री रजनीश की तत्त्वानुभूतियों से परिचित कराने की दिशा में एक अनुपम कृति :

'आचार्य रजनीश : समन्वय विश्लेषण संसिद्धि'

लेखक : डा. रामचंद्र प्रसाद, एम्. ए., पी. एच. डी. (एडिनबरा) डी. लिट. (पटना)
रीडर, अंग्रेजी विभाग, पटना विश्वविद्यालय।

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :

(१) मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७।
(२) चौक, वाराणसी –१ (उ. प्र.)
(३) अशोक राजपथ, पटना–४ (बिहार)

मूल्य रु. ७–५० पै.

१४

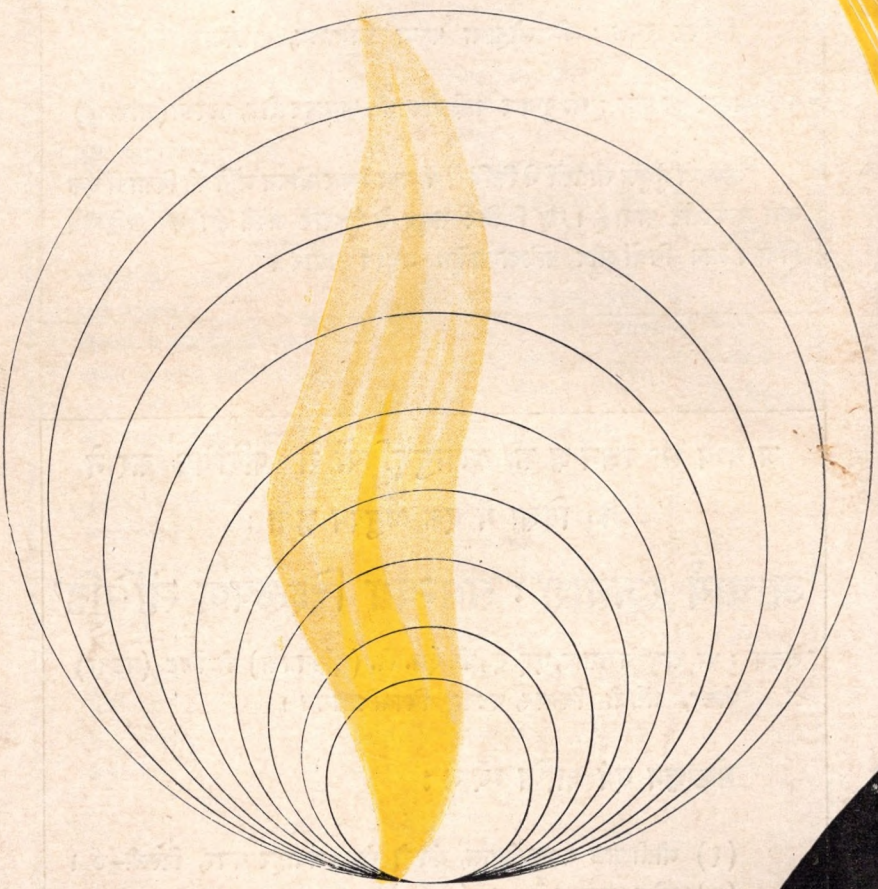

जीवन जागृति केन्द्र